शून्य की नाव

क्या कहा कि जीवन दुख है ? नहीं। मित्र, जीवन तो वही है जो हम उसे बना लेते हैं। जीवन तुम्हारे लिए आनन्द नहीं बनेगा जब तक कि तुम उसे आनन्द न बना लो। जीवन तो बस एक अवसर है। वह तो एक रिक्तता है। उसे तो हम अपने जीने से ही भरते और पूर्ण करते हैं। मनुष्य को जीवन मिला हुआ नहीं है। वह तो रोज़-रोज़ जीता है और उसे निर्माण करता है। जीवन आत्म-सृजन है। और, इसलिए मनुष्य किसी और के प्रति नहीं, बस स्वयं के प्रति ही उत्तरदायी है।

—आचार्य रजनीश

शून्य की नाव

प्रकाशक :

जीवन-जागृति-केन्द्र

५३, एम्पायर बिल्डिंग, पहला माला

१४६, डॉ० डी० एन० रोड, बम्बई-१

द्वितीय संस्करण

जून १९७०

मूल्य : तीन रुपये

मुखपृष्ठ कलाकार

रंगरेखा स्टूडियो

मुद्रक :

विश्वनाथ भार्गव,

मनोहर प्रेस, जतनबर, वाराणसी

शून्य की नाव

नारगोल साधना-शिविर मई १९६८ में दिये गये
आचार्य श्री रजनीश के प्रवचन

संकलन :
डॉ० रतन प्रकाश
एम० ए०, पी-एच० डी०

अन्तर्वस्तु

मौन-द्वार की यात्रा

उद्घाटन प्रवचन

बहुत पुराने दिनों की बात है। एक सम्राट् अपने जीवन के अंतिम दिनों की गिनती कर रहा था और बहुत चिन्तित भी था। मृत्यु से नहीं, वरन् अपने तीन लड़कों से, जिनके हाथ में उसे राज्य को सौंपना था। वह यह निर्णय करने में असमर्थ था कि किसके हाथ में राज्य की शक्ति दे दे, क्योंकि शक्ति केवल उन हाथों में शुभ होती है जो शांत हो। और यह निर्णय बहुत कठिन था कि उन तीनों में शांत कौन है। कैसे परीक्षा हो? कैसे जाना जा सके कि कौन व्यक्ति उस राज्य के हित में होगा और कौन अहित में? कुछ चीज़ें होती हैं जो बाहर से मापी जा सकती हैं, लेकिन जीवन में जो भी महत्त्वपूर्ण है उसे मापने के लिए न कोई बाट है, न कोई तराजू है। कुछ चीज़ें हैं जो बाहर से पहचानी जा सकती हैं, लेकिन जीवन में जो भी महत्त्वपूर्ण है उसे बाहर से भी पहचानने का कोई उपाय नहीं है। कैसे पहचाना जा सके, कैसे जाना जा सके, क्या रास्ता हो?

उस सम्राट् ने एक फकीर से पूछा। उस फकीर ने कोई रास्ता बताया। दूसरे दिन सुबह उसने अपने तीनों बेटों को बुलाया और उन्हें सौ-सौ रुपये दिये और कहा कि, 'तीन जो महल हैं उन तीनों के नाम, ये सौ सौ रुपये मैं देता हूँ। सौ रुपये में ऐसी चीज़ें खरीदना कि पूरा महल भर जाय, कुछ जगह खाली न बचे। जो तीनों में सर्वाधिक सफल हो जायेगा वही सम्राट् बनेगा, वही राज्य का अधिकारी होगा।'

कुल सौ रुपये! और महल उन राजकुमारों के बहुत बड़े थे। पहले राजकुमार ने सोचा—सौ रुपये से क्या महल भरा जा सकेगा? वह गया जुआ घर में और सौ रुपये उसने दाँव पर लगा दिये। हो सकता है जुए में जीत सके तो फिर बहुत रुपये उस बड़े महल में भर ले; क्योंकि महल बहुत बड़ा था। सौ रुपये में भरा नहीं जा सकता था। लेकिन जैसा कि अक्सर होता है, जो बहुत खोजने जुए में जाते हैं, वह भी खोकर लौट आते हैं जो उनके पास था। वैसे ही वह युवक भी सौ रुपये खोकर घर वापस लौट आया। उसका महल बिलकुल खाली रह गया।

दूसरे राजकुमार ने सोचा कि सौ रुपये बहुत थोड़े हैं। इतना बड़ा महल हीरे-जवाहरातों से भरा नहीं जा सकता। एक ही रास्ता है कि गाँव का जो कूड़ा-करकट बाहर फेंका जाता है, वह खरीद लिया जाये और महल भर दिया जाये। गाँव से जो भी कूड़ा-कचरा बाहर जाता, सब उसने खरीदना शुरू कर

दिया और महल में कूड़े-करकट के ढेर लगा दिये। सारा महल भर गया, लेकिन साथ ही दुर्गन्ध भी भर गयी। उस रास्ते से निकलना मुश्किल हो गया।

तीसरे राजकुमार ने भी महल भरा। किससे भरा, कैसे भरा, यह थोड़ी देर में स्पष्ट हो सकेगा।

तिथि आ गयी निर्णय की। परीक्षा के लिए सम्राट् आया। पहले राजकुमार का महल खाली था। उस राजकुमार ने कहा, 'क्षमा करें। सौ रुपये बहुत कम थे। सोचा मैंने जुआ खेलूँ, शायद जीत जाऊँ तो फिर महल भरूँ। मैं हार गया और महल खाली रह गया।'

दूसरे राजकुमार के महल के पास जाकर तो घबराहट हो गयी। इतनी बदबू थी, सारा महल कूड़ा-करकट, गन्दगी से भरा था। उस राजकुमार ने कहा, 'कोई और रास्ता न था। सिर्फ कचरा ही खरीदा जा सकता था, सौ रुपये में और क्या मिल सकता है?'

फिर सम्राट् तीसरे राजकुमार के महल के पास गया। देखकर दंग रह गये परीक्षार्थी, निर्णायक देखकर आश्चर्य से भर गये—इतनी सुगन्ध थी उस महल के पास। फिर वे भीतर गये, रात थी अमावस की। सारे महल में दिये जलाये गये थे। राजा ने पूछा, 'तूने महल किस चीज से भरा है?'

उस राजकुमार ने कहा, 'प्रकाश से, आलोक से।'

कोने-कोने में दिये जले थे। सारा महल प्रकाश से भरा था, सुगन्धें छिड़की गयी थीं और महल के द्वार-द्वार, खिड़की-खिड़की पर फूल लटकाये गये थे। महल सुगन्ध से और प्रकाश से भरा था। तीसरा राजकुमार सम्राट् हो गया। वह उस राज्य का अधिकारी हो गया।

बहुत ही मुश्किल है हममें से कोई जीवन का सम्राट् हो सके। क्योंकि या तो हमने जीवन को दांव पर लगा रखा है और हर दांव इस आशा से कि कुछ मिलेगा तो फिर हम जी लेंगे। और जैसा कि दांव पर होता है, हम हारते ही चले जाते हैं और जीवन का महल अंततः सूना ही रह जाता है और या फिर हममें से कुछ ने कूड़े-करकट से महल को भरने की ठान ली है। जीवन में जो भी व्यर्थ है उसीको खरीदकर हम महल को लिये चले जा रहे हैं। जिसका कोई मूल्य नहीं अंतिम, जिसका कोई अन्तिम अर्थ नहीं, उस सब कूड़े-करकट को हम घर में इकट्ठा कर रहे हैं, क्योंकि तर्क हमारा यही है कि इतना छोटा-सा जीवन इतनी छोटी शक्ति, इससे महल कोई हीरे-जवाहरातों से तो भरा नहीं जा सकता

इतनी थोड़ी शक्ति से महल कूड़े से ही भरा जा सकता है, सो हम कूड़े से भर रहे हैं। लेकिन हमें पता नहीं कि जिस महल को भरने में हम लगे हैं, उसीकी दुर्गन्ध हमें महल के भीतर रहने नहीं देगी। हमारा जीना ही मुश्किल हो जायगा और मुश्किल हो गया है। इतनी अशांति, इतना संत्रास, इतनी चिन्ता क्यों? यह चिन्ता और अशांति आकाश से नहीं आती, न चांद-तारों से आती है। यह चिन्ता और पीड़ा कहीं से भी नहीं आती है सिवाय उस महल के जो हमने ही दुर्गन्ध, कूड़े-करकट से भर रखा है। सारी अशांति, सारी चिन्ता, सारी पीड़ा वहीं से पैदा होती है। यह हमारे श्रम का फल है, यह हमारी ही चेष्टा है, यह हमारा ही प्रयास है, हमारा ही प्रयत्न है। लेकिन यह दो तरह के राजकुमार तो हमारे भीतर हैं। यह तीसरा राजकुमार हमारे भीतर नहीं है जो प्रकाश से, सुगन्ध से अपने महल को भर सके।

यहाँ इस निर्जन में, इस सागर तट पर इसीलिए आपको बुलाया है कि इन तीन दिनों में आपसे कुछ बातें करूँ कि महल का दिया जल सके। महल में फूल आ सके, सुगंध आ सके और शायद परमात्मा के राज्य के आप भी अधिकारी हो सकते हैं। किसे पता है कि आपको भी इसीलिए तो नहीं भेजा गया? किसको पता है कि जीवन एक प्रतीक्षा न हो? किसको पता है कि जीवन एक परीक्षा न हो? किसको पता है कि जीवन की इस परीक्षा में कैसे और कौन उत्तीर्ण होगा? लेकिन एक बात सुनिश्चित है कि जीवन के अंत तक जो स्वयं में प्रकाश डाल लेता है, अपने जीवन के महल को जो सुगंध से भर लेता है, स्वयं जो संगीतमय बन जाता है, अगर कहीं भी कोई परमात्मा है, अगर कहीं भी कोई आनन्द है, अगर कहीं भी कोई संपदा है तो निश्चित ही वह उसका अधिकारी हो जाता है।

इस कहानी से इसलिए शुरू करना चाहता हूँ, ताकि आपका जीवनगृह खाली न रह जाय, कूड़े-करकट से न भर जाय, प्रकाश से भर सके, संगीत से भर सके, सुगन्ध से भर सके। यह कैसे हो सकता है? आज की रात तो कुछ थोड़े-से प्राथमिक सूत्रों पर आपसे मैं बात करूँगा, जिनके आधार पर तीन दिन हम जीने की कोशिश करेंगे।

वह महल कैसे प्रकाश से भरेगा? वह तो आनेवाले तीन दिनों में उसकी दिशा में कुछ सूत्र, कुछ वैज्ञानिक चरण, आपको कहूँगा, लेकिन उसके पहले कुछ तो कुछ प्रथम सूत्र ही समझ लेने जरूरी हैं कि इन तीन दिनों के लिए हम कैसे जियेंगे, कैसे रहेंगे?

इतना स्पष्ट समझ लें कि तीन क्षण के लिए भी ठीक से जीना सीखा जाये तो सारा जीवन ठीक हो सकता है, क्योंकि जो व्यक्ति एक क्षण को भी जीने की ठीक दिशा में कदम उठा ले, जो एक क्षण को भी जीवन में आनन्द से सम्बन्धित हो जाये, फिर उस जीवन में उसका उस आनन्द से अलग हो जाना असम्भव है। एक बार भी जो आँख खोल ले और देख ले, तो फिर इस जीवन में आँख का बन्द हो जाना, अंधे रहना और भटक जाना सम्भव नहीं है। तीन दिन बहुत है और तीन दिन आप निकालकर यहाँ आ गये हैं, वह भी स्वागत के योग्य है और धन्यवाद के योग्य भी। क्योंकि आज की दुनिया में कोई तीन दिन भी जीवन को प्रकाश से भरने के लिए निकालने को राजी नहीं है।

एक बहुत बड़ा सौदागर नौका लेकर दूर-दूर देशों में करोड़ों रुपये कमाने गया था। उसके मित्रों ने उससे कहा कि तुम नौका में घूमते हो। पुराने जमाने की नौका है। तूफान आते है, खतरे होते हैं, नावें डूब जाती है। तुम तैरना तो सीख लो।

सौदागर ने कहा कि तैरना सीखने के लिए मेरे पास समय कहाँ है ?

लोगों ने कहा, समय की जरूरत नही। गाँव में एक कुशल तैराक है। वह कहता है तीन दिन में ही हम तैरना सिखा देंगे।

वह जो कहता है, ठीक कहता है; लेकिन तीन दिन मेरे पास कहाँ ? तीन दिन में हजारों का कारोबार कर लेता हूँ। तीन दिन में तो लाखों यहाँ से वहाँ हो जाते हैं। कभी फुरसत मिलेगी तो जरूर सीख लूँगा।

फिर भी लोगों ने कहा कि बड़ा खतरा है, तुम्हारा नाव पर निरन्तर जीवन है, किसी भी दिन खतरा हो और तुम तैरना न जानो !

उसने कहा कि और कोई सस्ती तरकीब हो तो बता दो, इतना समय तो मेरे पास नहीं है।

तो लोगों ने कहा कि कम-से-कम दो पीपे अपने पास रख लो। कभी जरूरत पड़ जाये तो उन्हें पकड़कर तुम तैर तो सकोगे।

उसने दो खाली पीपे मुँह बन्द करवाकर अपने पास रख लिये। उनको हमेशा अपनी नाव में, जहाँ वह सोता, वहीं रखता। और किसीको पता भी न था और एक दिन वह घड़ी आ गयी। तूफान उठा और नाव डूबने लगी। वह चिल्लाया, मेरे पीपे कहाँ हैं ?

उसके नाविकों ने समझा कि ठीक है, वह अपने पीपे खोजकर आ जायेगा। वह उसके बिस्तर के नीचे ही रखे रहते हैं। बाकी नाविक तो कूद गये, वे तैरना जानते थे। वह अपने पीपे के पास गया। लेकिन दो खाली पीपे भी वहाँ थे जो उसने तैरने के लिए रखे थे और दो स्वर्ण-अशर्फियों से भरे पीपे भी थे, जिन्हें वह लेकर आ रहा था। उसका मन डाँवाडोल होने लगा कि कौनसे पीपे लेकर कूदे ····सोने से भरे हुए या खाली ?······फिर आकर उसने देखा कि नाव तो डूबने लगी। खाली पीपे लेकर कूदने से क्या होगा ? उसने अपने सोने से भरे पीपे लिये और कूद गया।

······जो उस सौदागर का हुआ होगा, वह आप समझ सकते हैं। वह तीन दिन तैरने के लिए नहीं निकाल सका था। आप तीन दिन निकाल सके हैं, इससे स्वागत आपका करता हूँ। और उसे मौका भी मिल गया था कि वह खाली पीपे लेकर कूद जाता, लेकिन वह भरे पीपे लिये कूद गया। क्योंकि जिनकी जीवन भर भरे होने की आदत होती है, वे एक क्षण भी खाली होने को राजी नहीं हो सकते। इधर तीन दिनों में खाली पीपे कैसे उपलब्ध किये जा सकें वही मुझे आपसे कहना है और नदी में तैरना हो तो खाली पीपा सहयोगी होता है और अगर परमात्मा के सागर में और जीवन के सागर में तैरना हो तो स्वयं का खाली पीपा बन जाना जरूरी होता है। वहाँ जो व्यक्ति जितना खाली और शून्य हो जाता है, वह उतना ही प्रभु के सागर में तैरने में समर्थ हो जाता है, लेकिन हम सब अपने को भरने की कोशिश में लगे रहते हैं। कोई सोने से भर लेता है, कोई मिट्टी से। कोई कंकड़ों से भर लेता है, कोई हीरे-जवाहरातों से। लेकिन पीपे सोने से भरे हैं या मिट्टी से, कंकड़ों से या हीरे-जवाहरातों से, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। भरा पीपा डुबाता है, चाहे किसी चीज से भरा हो। उस दिन सोने से भरे पीपे ने उसे बचाया नहीं। क्या उसके मन में नहीं होगा डूबते क्षणों में कि "अरे पीपे, मैंने तुझे सोने से भरा है और तू मुझे बचाता नहीं। मैंने कोई मिट्टी तो भरी नहीं है जो मैं डूब जाऊँ, मैंने सोने से भरा है तुझे, फिर भी तू डूबता है"; लेकिन पीपे ने शायद ही सुना हो, क्योंकि भरे पीपे सिर्फ डूबना जानते हैं, तैरना नहीं जानते, फिर वे किससे भरे हैं, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता······।

हमने क्या भर लिया है अपने भीतर, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। हमने सिर्फ डूबने की तैयारी की है, तैरने की हमारी कोई तैयारी नहीं है। धर्म तैरने की कला है और हम जो कुछ सीखे हैं वह सब डूबने की तैयारी है। कैसे हम

को खाली करेंगे, कैसे हम तैरने में समर्थ होंगे, कैसे हम जीवन की नाव ः
अज्ञात के सागर में से तट तक पहुँचा सकते हैं जिस तट का नाम परमात्मा है
जिस तट का नाम प्रभु है, जिसका नाम सत्य है। कैसे ?

प्राथमिक सूत्र स्मरण कर लेने जरूरी हैं।

मुझसे लोग पूछते हैं कि साधना-शिविर माने क्या ? कल ही मुझसे को
रास्ते में पूछ रहा था कि साधना-शिविर क्या है और सत्संग क्या है ? मैं
उनसे कहा, सत्संग उनके लिए है जो श्रावक हैं, जो सुनने को उत्सुक हैं औ
साधना-शिविर उनके लिए है जो साधक हैं, जो सिर्फ सुनने को नहीं, कुछ करं
को आतुर हैं। जो लोग सिर्फ सुनने आ गये हों वह गलत जगह आ गये हैं
सुनाने के लिए तो मैं खुद ही आपके नगरों में आ जाता हूँ कि आप सुन सकें
लेकिन कुछ करना है इसलिए यहाँ इस दूरी पर आपको बुलाया है, इस अकेलेप
में, ताकि कुछ किया जा सके। इन तीन दिनों में सुनने की बहुत चिंता मत
करना। इन तीन दिनों में कुछ करने का ख्याल स्पष्ट होना चाहिए। हम चाहे
कितनी ही अच्छी बातें जान लें, उनके जानने और सुन लेने से जीवन में क्रांति
और कोई परिवर्तन नहीं हो जाता है, बल्कि इस लिहाज से व्यर्थ की बातें
जानना उपयोगी भी है, क्योंकि व्यर्थ की बात जानकर कोई भी यह नहीं सोचता
कि मुझे कुछ मिलता है, लेकिन सार्थक बातें जानकर एक भ्रम पैदा होता है कि
शायद हमें कुछ उपलब्ध होता है, कुछ मिलता है। अकेले सुनने से कुछ भी
मिलने को नहीं है, यह साधक को सबसे पहले जान लेना चाहिए। उसे
करना पड़ेगा, उसे कुछ होना पड़ेगा, उसे अपनी जीवन-विधि में कोई परिवर्तन,
अपने जीने के ढंग में कोई भेद, अपने होने की व्यवस्था में कोई क्रांति करनी
पड़ेगी तो कुछ हो सकता है, अन्यथा कुछ भी नहीं हो सकता। मात्र सुननेवाला
होने से कुछ भी अर्थ नहीं है। सुनना भी एक मनोरंजन है। कोई संगीत
सुनकर आनन्द अनुभव करता है, कोई जीवन के सत्य की बात सुनकर आनन्द
अनुभव करता है, लेकिन वह मनोरंजन से ज्यादा नहीं, थोड़ी देर के लिए
सुलाता है। हमें कुछ करना पड़े तो हमारा जीवन बदल सकता है। मैं जो
कहूँगा इन तीन दिनों में, वह इसी दृष्टि से कि आपके भीतर कोई क्रियात्मक
रूपान्तरण बने, कोई एक्टिव ट्रांसफर्मेशन बने, वह आपके भीतर कुछ बदल ले
आये। लेकिन वह बदल मैं नहीं ला सकता हूँ, वह बदल आपका सहयोग मिले
तो निश्चित आ सकता है।

पहली बात, साधना-शिविर एक क्रियात्मक जीवन-क्रांति के लिए, सक्रिय

रूप से, रचनात्मक रूप से, सृजनात्मक रूप से स्वयं को बदलने के लिए एक अवसर है। मात्र सुनने के लिए, समझने के लिए कुछ तर्क, कुछ विचार, कुछ चिंतन के लिए नहीं, बल्कि कुछ स्वयं के जीवन की स्थितियों को नया रूप, नया जीवन, नयी दिशा देने के लिए। इस बात को बहुत स्पष्ट रूप से ध्यान में लेंगे, तो मैं जो कहूँगा उस पर आपस में कोई विचार नहीं करना है। मैं जो कहूँगा उस पर बहुत चिंतन नहीं करना है, उस पर बहुत मनन नहीं करना है। मैं जो कहूँगा उस पर आपस में विवेचन, विवाद और चर्चा बहुत नहीं करनी है। मैं जो कहूँगा उस पर थोड़े प्रयोग करने हैं। तीन दिन बहुत छोटा समय है। उसे चर्चा में, विचार में खो देना उपयोगी नहीं। उस पर थोड़े से प्रयोग कर लेने जरूरी हैं, क्योंकि मैं जो कहूँगा वह प्रयोग करने से ही स्पष्ट होगा और समझ में आयेगा कि उसका क्या अर्थ है। मैं जो कहूँगा उस दिशा में एक कदम भी उठायेंगे तो पूरा का पूरा स्मरण में स्पष्ट हो जायेगा कि क्या कहा है और उसका क्या अर्थ है। उस पर कितना ही सोचें, विचार करें, आपस में विवाद करें, कुछ भी स्पष्ट नहीं होगा, बल्कि थोड़ा स्पष्ट भी हुआ होगा तो वह भी अस्पष्ट हो जायेगा, वह भी उलझ जायेगा।

जीवन में कुछ चीजें हैं, जो केवल जानकर ही नहीं, करके ही जानी और देखी जा सकती हैं। एक अंधे आदमी को हम समझाते हैं प्रकाश के सम्बन्ध में तो कुछ भी समझ में नहीं आयेगा, लेकिन उसकी आँख का इलाज हो सके, वह आँख खोलकर देख सके तो प्रकाश के सम्बन्ध में बिना समझाये सब-कुछ समझ में आ जाता है। हमारी स्थिति भी कुछ आँख बंद किये लोगों जैसी है। आँख खोलने का उपाय किया जा सकता है, लेकिन प्रकाश को समझने का कोई उपाय नहीं। यह आँख कैसे खुले इसकी प्राथमिक तैयारी हमारी क्या होगी, इसे ध्यान में ले लेना जरूरी है कि हम कुछ करने को यहाँ इकट्ठे हुए हैं, कुछ सुनने और विचार के लिए नहीं। एक बार यह स्पष्ट हो मन में कि कुछ करने से रास्ता साफ होगा तो फिर मैं जो कहूँगा, आप उसे दूसरे ढंग से सुनेंगे।

एक घर में आग लगी हो और मैं जाकर कहूँ कि घर में आग लगी हुई है और उस घर के लोग विचार करने लगें कि मै क्या कह रहा हूँ, मेरे कहने का क्या अर्थ है, क्या प्रयोजन है तो उस घर की आग को बुझाना बहुत मुश्किल हो जायेगा। लेकिन जब मैं कह रहा हूँ, घर में आग लगी हुई है तो मैं कोई न उपदेश दे रहा हूँ न मैं कोई दार्शनिक सिद्धांत कह रहा हूँ, मैं केवल एक

सूचना दे रहा हूँ कि घर से बाहर निकल जाना जरूरी है। घर से बाहर जाने के लिए एक सृजनात्मक, एक सक्रिय कदम उठाने के लिए पुकार दे रहा हूँ। घर में आग लगी है, यह न कोई सिद्धांत है, न कोई विवाद है, न कोई वाद है, न कोई फिलॉसफी है। यह केवल एक सूचना है और सूचना भी उनके लिए जो घर से दौड़कर बाहर आ सकते हैं और कुछ कर सकते हैं। इधर जो बातें मैं तीन दिन में कहनेवाला हूँ, वह इसी दृष्टि से कि आपके भीतर कोई सक्रिय कदम पैदा हो सके। यह आपको प्राथमिक रूप से स्मरण रख लेना चाहिए। जरूरी है कि मेरा कहा हुआ कोई सक्रिय कदम उठाने की दिशा में एक पुकार पर आवाहन है—सुनने, समझने, तत्त्वचिंतन के लिए नहीं। तत्त्वसाधना के लिए दृष्टि है, यह पहली बात है।

के घेरे में वापस तो नहीं लौटा जा रहा हूँ। यहाँ कोई अखबार पढ़ने की जरूरत नहीं है, न यहाँ रेडियो सुनने की जरूरत है, न एक-दूसरे से व्यर्थ की बातें करने की जरूरत है। तीन दिन के लिए विश्राम ले लें अपनी सब आदतों से। यहाँ अगर पति और पत्नी साथ आये हों तो एक-दूसरे को पति और पत्नी मानने की कोई जरूरत नहीं है। इन तीन दिनों के लिए छुट्टी ले लें पत्नी होने से और पति होने से। इन तीन दिनों के लिए वह सारे भाव घर पर छोड़ आयें जो घर के घेरे में हमको कैद रखते हैं, अन्यथा आप वहाँ से यहाँ कभी नहीं आ पायेंगे।

जमीन पर यात्रा कर लेना बिलकुल आसान है। असली यात्रा मन के तल पर करने की जरूरत है। साधना-शिविर नारगोल में नहीं हो रहा है, नारगोल में हो रहा होता तो आप आ चुके हैं वहाँ। साधना-शिविर अपने भीतर होगा और वह यात्रा अगर आप करते हैं सचेतन रूप से, तो ही हो सकती है; अन्यथा रेलगाड़ियाँ हमें कहीं भी पहुँचा देती हैं, रास्ते हमें कहीं भी पहुँचा देते हैं, सिर्फ एक जगह के बाहर हमें नहीं ले जा पाते, अपने बाहर नहीं ले जा पाते। हम हमेशा अपने साथ मौजूद हो जाते हैं। साधना-शिविर में बहुत जरूरी है कि आप अपने को थोड़ा-सा घर छोड़ आते है। घर न छोड़ आये हों तो अभी छोड़ दें। इन तीन दिनो में आप एक नये आदमी की तरह जियें जिसका कोई ढाँचा नहीं, कोई आदत नही। और आपकी जो आदतें हैं और जो आपके ढांचे है जो मन को जकड़ता है, उनसे थोड़ा सावधान रहने की कोशिश करें।

हो सकता है आपको विवाद करने की आदत हो। किसीने कुछ कहा और आप भी बात करने लगे। थोड़ा सचेत होकर देखें कि मैं कहीं अपनी विवाद करने की आदत में तो नहीं पड़ रहा हूँ और जैसे ही ख्याल आ जाय, फौरन क्षमा मांग लें और कहें "मैं भूल गया था, मैं भूल गया। मेरी आदत वापस लौट आयी। मैं क्षमा चाहता हूँ और वापस लौटता हूँ। इस आदत को को यहीं छोड़ देता हूँ।"

दिन भर हमारी बातें करने की आदतें हैं। कुछ-न-कुछ हम बात कर रहे हैं। मौन बैठने का तो कोई सवाल नहीं है और आपको पता ही नहीं है कि बात करनेवाले लोग कभी भी जीवन के सत्य को नहीं जान सकते है। केवल वे ही लोग जो कभी मौन होना भी जानते है, वे ही पहुँच पाते हैं। मौन हुए बिना कोई स्वयं के सत्य तक न कभी पहुँचा है न कभी पहुँच सकता है। हम

हैं कि चौबीस घंटे बातचीत में तल्लीन हैं। एक घड़ी हमें मौका मिल जाय चुप होने का तो बड़ी बेचैनी, बड़ी कठिनाइयाँ प्रारम्भ हो जाती हैं। ऐसा लगने लगता है कि कैसे गुजरेगी यह घड़ी। यहाँ तीन दिन इसका प्रयोग करें। ज्यादा से ज्यादा मौन रहें। कम-से-कम बोलें। बहुत जरूरी हो तो बोलें, जो अत्यधिक सूत्रबद्ध हो। जैसे कि आप पैसे गिन रहे हो वैसे गिन-गिनकर एक-एक शब्द बोलें। आदमी तार करता है तो लम्बी-लम्बी बातें नहीं लिखता। दस शब्द लिख देता है, एक-एक काटता जाता है कि यह व्यर्थ है। इसकी कोई जरूरत नहीं है। और आठ शब्दों का तार इतना काम करता है कि जितना आठ हजार शब्दों की चिट्ठी नहीं करती। क्योंकि शब्द जितने जरूरी रह जाते है, जितने महत्त्वपूर्ण हो जाते हैं, उतने ही लघुतर हो जाते हैं। वे उतने ही एकाग्र हो जाते हैं, उतनी ही उनमें तीव्रता बढ़ जाती है। जितना वे बिखर जाते हैं, जितने ज्यादा हो जाते हैं, उतनी तीव्रता कम हो जाती है, उतना बिखराव कम हो जाता है जैसे सूरज की किरणों को हम इकट्ठा कर लें किसी काँच से तो आग पैदा हो जाती है और बिखरी हुई किरणें बढ़ती रहती हैं तो कोई आग पैदा नहीं होती। जो लोग मौन होने की कला सीख जाते हैं, उनके शब्दों में प्राण और जादू आ जाते हैं। उनके एक-एक शब्द आग पैदा करने की योग्यता और शक्ति को उपलब्ध कर लेते हैं; लेकिन हम चौबीस घंटे बोले जा रहे हैं। कुछ भी बोले जा रहे हैं, जिसकी कोई जरूरत नहीं थी। जिसका कोई उपाय नहीं था, जिससे दुनिया में किसीका हित नहीं हुआ वह हम बोले चले जा रहे हैं। इन तीन दिनों में ख्याल रखें ऐसा एक शब्द भी आपके होठों से बाहर न आये जो अनावश्यक था। और आप हैरान हो जायेंगे कि आवश्यक शब्द इतने कम हैं, आवश्यक बातें इतनी कम हैं कि आप पायेंगे कि घंटों मौन में बीते जा रहे हैं, लेकिन आवश्यक शब्द कठिनाई से ढूँढने में मिलता है······एकाध······।

लाओत्से का नाम आपने सुना होगा। वह कोई ढाई हजार वर्ष पहले चीन में हुआ था। वह रोज सुबह घूमने जाता था। एक मित्र भी उसके साथ घूमने जाता था। मित्र आकर उसे करता नमस्कार। आधा घंटा बाद लाओत्से कहता नमस्कार। आधा घंटा टल जाने के बाद इतनी ही कुल बात होती थी। बस ये नमस्कार होते थे दो। घंटे दो घंटे घूमकर पहाड़ी से वे लौटकर वापस आते। एक दिन मित्र के साथ एक मेहमान भी आ गया। फिर वह तीनों घूमने गये। रास्ते में उस मेहमान ने इतना ही कहा कि कितनी खूबसूरत सुबह है, कितना अच्छा मौसम है।

लेकिन वे दोनों चूँकि चुप थे इतना कहकर वे भी चुप हो गये। फिर वे वापस लौट आये। घर आकर लाओत्से ने अपने मित्र के कान में कहा कि अपने मेहमान को कल से न लाना। बहुत बातूनी मालूम पड़ता है। हमको भी दिखायी पड़ता था कि सुबह बहुत सुन्दर है, इसे कहने की जरूरत क्या थी? अनावश्यक था। हम भी मौजूद थे, हम भी उस सुबह को देख रहे थे। इसे कहने की क्या जरूरत थी। इस बातूनी मित्र को साथ मत लाना।

आवश्यक-अनावश्यक का ऐसा स्पष्ट भेद मन में होना चाहिए कि मैं क्या कह रहा हूँ। वह आवश्यक है या अनावश्यक है और अगर बीच में भी ख्याल आ जाय कि अनावश्यक बात मैंने कही, आधी हो गयी तो आधी ही छोड़ देना इन तीन दिनों में। वहीं छोड़ देना, वहीं से क्षमा माँग लेना कि गलती हो गयी। व्यर्थ की बात आदत के कारण किये चला जा रहा हूँ।

ये तीन दिन मौन के दिन बनने चाहिए। इस समुद्र का किनारा इतना अद्‌भुत है, इसके पास अकेले में जाकर बैठना। ये सरू के वृक्ष इतने सुन्दर हैं, इनके पास बैठना! न अपनी पत्नी से बात करना, न अपने मित्रों से। सरू के दरख्तों से कर लेना, समुद्र से कर लेना। यहाँ शिविर में आप बिलकुल अकेले हैं। इस भाँति के भावबोध की तीसरी बात स्मरण रखना। यहाँ ये छः सौ लोग नहीं हैं, यहाँ मैं अकेला हूँ। क्योंकि हम जिस दिशा में जाना चाहते हैं, जिस ध्यान की दिशा में, जिस साधना की दिशा में वहाँ कोई संगी-साथी नहीं है। वहाँ हर आदमी अकेला है। परमात्मा के रास्ते पर कोई भीड़-भाड़ नहीं जाती। वहाँ एक-एक आदमी ही जाता है। यहाँ हम सब अकेले हैं। साधक की हैसियत से कोई भीड़-भाड़ का सम्बन्ध नहीं। यहाँ इतने लोग है, लेकिन प्रत्येक को यह अनुभव करना है कि मैं बिलकुल अकेला हूँ। मेरे साथ यहाँ कोई भी नहीं है। मुझे ऐसे जीना है तीन दिन, जैसे कि बिलकुल अकेला हूँ। साथ न खोजें। यहाँ कोई मित्र-मण्डली न खोजें, यह न कहें कि मुझे मेरे मित्रों के साथ ठहरा दें। यहाँ कोई है ही नहीं।

आज का सबसे बड़ा संत्रास भीड़ है। हर कदम पर, हर ओर व्यक्ति भी व्यक्तियों से घिरा है। यहाँ आप बिलकुल अकेले हैं और यहाँ तीन दिन बिलकुल अकेले, नितान्त-एकान्त में जीने का प्रयोग करना है। अकेले जीने में जो समर्थ हो जाता है, उसके लिए वे द्वार खुल जाते हैं जो भीड़ में रहनेवालों के लिए हमेशा बन्द हैं। अकेले होने का भाव, अभी रात जाकर आप सोएँगे तो इस भाँति जैसे आप बिलकुल अकेले हैं, इस बड़ी जगह में कोई भी नहीं है। ऐसे

चुपचाप अकेले नींद में डूब जायें। सुबह-सुबह उठें तब भी ऐसे जैसे कि बिलकुल अकेले हैं और सच है कि आदमी अकेला है। जन्म अकेला है, मौत अकेली है; बीच में बहुत भीड़-भाड़ दिखायी पड़ती है तो हम सोचते हैं कि कोई हमारे साथ है। शरीर से शरीर टकरा जाते हैं तो हम सोचते हैं कि कोई हमारे साथ है। शब्द से शब्द बात कर लेते हैं तो हम सोचते हैं कि कोई हमारे साथ है। लेकिन कोई किसीके साथ नहीं है। यह यात्रा बिलकुल अकेली है। भीड़ के बीच भी एक-एक आदमी अकेला है। कोई किसीके साथ नहीं है।

कम-से-कम तीन दिन तो इस स्मरण को गहरा करें कि मैं बिलकुल अकेला हूँ। इस स्मरण के परिणाम होंगे। जब आपको ख्याल आयेगा कि मैं बिलकुल अकेला हूँ तो इसके साथ एक अद्‌भुत मौन आपके भीतर पैदा होना शुरू हो जायेगा। क्योंकि बात वहाँ शुरू होती है जहाँ कोई और है। सम्बन्ध वहाँ बनते हैं जहाँ कोई और है। झगड़े, मित्रता और शत्रुता वहाँ खड़ी होती है जहाँ कोई और है। जहाँ मैं अकेला हूँ, बिलकुल अकेला हूँ, वहाँ एक कोरा सन्नाटा भीतर पैदा हो जायेगा तो आश्चर्य नहीं। मौन एकाकीपन की छाया है। अकेले होने का भाव इन तीन दिनों में गहरे से गहरा होना चाहिए। किसीको बाधा न दें, किसीके अकेलेपन को न तोड़ें। कोई अकेला झाड़ों के नीचे बैठा हो तो उसके पास न जायें। पहुँच जाये भूल से तो तुरन्त हट जाइये। जैसे ही ख्याल आ जाये तो हरएक को अकेला होने दें, अकेला रहने दें, अकेला जाने दें, अकेला अनुभव करने दें। अगर तीन दिन कोई घनत्व से., कोई पूरी तीव्रता से अकेलेपन का अनुभव करे तो तीन दिन में वह क्रांति हो जायेगी जिसके लिए हम यहाँ इकट्ठे हुए हैं। अतः सूत्र यह स्मरण रखें कि हम बिलकुल अकेले हैं, एकदम अकेले हैं, एकदम अकेले, कोई नहीं साथ है।

एक फकीर था गुरुजिएफ। एक छोटे-से गाँव में वह प्रयोग कर रहा था। तीस लोगों को एक बंगले में बंद कर रखा था और उन तीस लोगों से कहा था कि तुम तीस यहाँ नहीं हो, एक-एक ही हो यहाँ। हरएक को यही अनुभव करना है कि मैं अकेला हूँ। तीन महीने तक यह प्रयोग चलेगा। कोई यह न सोचे कि दूसरा यहाँ मौजूद है। २९ लोग यहाँ नहीं हैं, अकेले हो तुम। न बोलना है, न किसीकी तरफ आँख उठाकर देखना है; क्योंकि आँखों से भी बोला जा सकता है। न स्मरण रखना है कि कोई यहाँ है, अकेले, बिलकुल अकेले हो। तीन महीने के उस प्रयोग ने उन्हें कहाँ पहुँचा दिया?

तीन महीने के उस प्रयोग में उन्होंने यह अनुभव किया जो कि आदमी

तीन जन्मो की मेहनत में करता है तो अनुभव नही हो पाता है। तीन महीने में वे परिपूर्ण शांत हो गये, क्योंकि जहाँ दूसरा मौजूद नही है वहाँ बोलने का उपाय नही। जहाँ दूसरा है ही नही, वहाँ मन में भी बात करने का कोई उपाय नही। मन में भी हम तभी बात कर पाते हैं, जब हम दूसरे को कल्पित कर लेते हैं, दूसरे को खड़ा कर लेते हैं, दूसरे का इमेज बना लेते हैं। दूसरे की प्रतिमा खड़ी हो जाती है, तब हम बात कर पाते है। कोई दूसरा मन में हो ही नही, मै बिलकुल अकेला हूँ, इसी भाव में वे तीन महीने तक डूबते चले गये, तो सारी वाणी समाप्त हो गयी। सारा संवाद बन्द हो गया, सारे विचार गिर गये, और निर्विचार मौन मे उन्होंने उसे जान लिया जो उनके भीतर छिपा था।

जब तक हम दूसरे से बोल रहे है, तब तक हम उसे नही जान सकेंगे जो हम है। जो 'मैं' हूँ उसे जानना हो तो 'तू' से छुटकारा चाहिए। वह जो दूसरा है उससे छुट्टी चाहिए, उससे मुक्ति चाहिए, उससे अवकाश चाहिए। जब तक हम 'तू' से बँधे हुए हैं, तब तक 'मैं' को नही जाना जा सकता है कि वह क्या है। क्योकि हमारी नजर, हमारी दृष्टि, हमारा ध्यान सब दूसरे पर बहा जा रहा है। हम चौबीस घंटे दूसरे पर बिखरे जा रहे है, दूसरे पर घूम रहे हैं, भटक रहे है और स्वयं का आना नही हो पाता है। यह स्वयं का आना हो सकता है, लेकिन उनके लिए अकेलेपन का, बिलकुल अकेलेपन का ख्याल, तीव्र [illegible] चाहिए।

बोधिधर्म एक भिक्षु था। एक सुबह एक युवक उसके पास आया और बोधिधर्म से पूछने लगा कि मैं कौन हूँ, मुझे इसका उत्तर [illegible]हिए। बोधिधर्म बड़ा कृपालु, बड़ा दयालु व्यक्ति था। उसकी दया अभी प[illegible]। चल जायेगी। उसने जोर से एक चाँटा मारा। युवक तिलमिला गया और कहा, यह आप क्या करते हैं ? मैं पूछने आया हूँ कि मैं कौन हूँ, और आप मारते है।

वह युवक उठा और वापस लौट आया। उसने जाकर एक दूसरे भिक्षु से कहा कि मैं गया था बोधिधर्म से पूछने, मैंने बड़ा नाम सुना था उसका। उन्होंने मुझे चांटा मार दिया है। उस भिक्षु ने कहा— बोधिधर्म बड़ा दयालु है। क्या तू मुझसे पूछने आया है ? अगर मुझसे पूछने आया है तो ठहर, मैं अपना डंडा उठाता हूँ।

वह बहुत हैरान हो गया, लेकिन लौटते समय उसे भी ख्याल आया कि बोधिधर्म को क्या प्रयोजन है मुझे मारने से ? वह मुझे मारेगा क्यो ? अपने हाथ को तकलीफ ही दी और तो कुछ नहीं। जरूर कोई बात होगी।

दूसरे दिन सुबह पहुँच गया और बोधिधर्म के पास जाकर बैठा ही था

कि बोधिधर्म ने कहा, फिर आ गये ? पूछेगा आज फिर ? अगर पूछेगा तो फिर मारूँगा, अगर आज नहीं भी पूछा तो भी मारूँगा, बोलो क्या कहते हो ?

वह युवक घबराया और नहीं बोल सका। बोधिधर्म हँसने लगा। उसने कहा, पागल, जब तू मुझसे पूछने आ गया है कि मैं कौन हूँ, दूसरे से पूछता है कि मैं कौन हूँ, तो उत्तर तुझे कभी भी नहीं मिलेगा और जो भी उत्तर मिलेगा सब झूठा मिलेगा, क्योंकि दूसरा यह उत्तर कैसे दे सकता है कि तू कौन है। वह उत्तर तो स्वयं से ही आयेगा। इसलिए मैंने तुझे चाँटा मारा। शायद उसके चाँटा मारने से तू उससे विरत हो जाये और अपने में लौट जाये। तेरे चाँटा मारकर मैंने कोशिश की कि तू अपने में लौट जाये, तू वापिस लौट जाये।

हम अपने में वापस लौट जायें तो शायद उसका पता चल जाये जो हम हैं और उसका पता चल जाना ही सत्य का पता चल जाना है और उसका पता चल जाना ही प्रभु का पता चल जाना है और उसका पता चल जाना ही जीवन के घर में रोशनी का जल जाना है, सुगन्ध का फैल जाना है।

मैं तीन दिन पूरी कोशिश करूँगा कि आप अपने में लौट जायें और इस अपने में वापस लौटने में आपका जो सहयोग होगा, वह यह कि 'तू' को भूल जाइये, यहाँ कोई दूसरा नहीं है। 'दी अदर'—वह जो दूसरा है उसको छोड़िये, उसको भूल ही जाइये कि वह है। इसलिए वृक्षों के साथ सरलता हो जाती है, समुद्र के साथ सरलता हो जाती है, पहाड़ों के साथ सरलता हो जाती है। यह क्यों ? क्योंकि वृक्ष को 'तू' कहने का ख्याल नहीं आता, समुद्र को 'तू' कहने का ख्याल नहीं आता। असली कठिनाई मानवीय सम्बन्धों की है। वह आदमी के साथ हमेशा तू मौजूद हो जाता है। इसलिए थोड़ी देर को यहाँ समुद्र के पास आना। समुद्र आपको अपनी तरफ वापस लौटा देता है, क्योंकि वहाँ कोई 'तू' नहीं है। वृक्षों के पास बैठना। वृक्ष आपको अपने पास वापस लौटा देते हैं, क्योंकि वहाँ कोई 'तू' नहीं है। आदमी के पास कठिनाई है अभी, क्योंकि वहाँ उसकी मौजूदगी तत्क्षण आपके चित्त को उसके आस-पास घुमाने लगती है। आप अपने में लौट नहीं पाते, उसके पास पहुँच जाते हैं। एक दिन जरूर ऐसा आ जाता है, जब आदमी के पास भी इसी तरह बैठ सकते हैं जैसे वृक्ष के पास, जैसे सागर के पास। जिस दिन कोई आदमी के पास भी ऐसे बैठ जाता है उस दिन आदमी के भीतर उसे वह दिखायी पड़ता है जो न पक्षियों में दिखायी पड़ता है, न सागरों में दिखायी पड़ता है। तब तो उसे आदमी के भीतर वह जो सबसे बड़ी 'मिस्ट्री' है, जीवन का वह जो रहस्य है, उसके दर्शन हो जाते हैं। लेकिन उसकी तैयारी

की हो तो फिर मैं किसी दिन अवश्य आऊँगा, लेकिन उसकी प्रतीक्षा करनी पड़ेगी, लेकिन आज नहीं। जब मौज में मैं होऊँगा, मेरा मन और मेरे पैर उठ जायेंगे दरवार की तरफ तो मैं आ जाऊँगा।

राजा लेकिन वहुत वेचैन हो गया और भी बेचैन हो गये। उसे पहली बार पता चला कि आदेश और प्रार्थना में फर्क है। जीवन में जो भी महत्त्वपूर्ण है वह प्रार्थना से आता है, जो भी व्यर्थ है आदेश से मिल जाता है। लेकिन प्रार्थना के लिए प्रतीक्षा करनी पड़ती है। आदेश अभी, इसी क्षण पूरा भी हो सकता है। लेकिन राजा को यह भी दिखायी पड़ गया है कि आदेश से भी संगीतज्ञ आ जायेगा और वीणा वजा भी देगा तो जिसे मैं सुनना चाहता हूँ, नहीं सुन पाऊँगा। लेकिन वह वड़ा आतुर था। उसने अपने दरबारी संगीतज्ञ से कहा कि तुम कोई रास्ता खोजो। उसने कहा रास्ता है। वह यह नहीं कि संगीतज्ञ दरवार में आये, वह यही कि हम संगीतज्ञ के घर चलें।

राजा ने कहा, इसमें क्या फर्क है, संगीतज्ञ यहाँ आये या हम उसके घर जायें। उस संगीतज्ञ ने कहा, वहुत फर्क है। जीवन में जो भी श्रेष्ठ है उसके पास हमें स्वयं ही जाना पड़ता है। घर बैठकर उसे बुलाना नहीं पड़ता है। हमें चलना पड़ता है कुछ कदम।

राजा राजी हो गया। संगीतज्ञ, जो एक फकीर था और दरिद्र आदमी था और भिखमँगों के कपड़े पहनता था, उसने राजा से कहा कि राजा के वस्त्रों में संगीतज्ञ के घर पहुँचना नहीं होगा। फिर तो वह वही वात होगी। उसमें कोई फर्क नहीं पड़ेगा। आप भी मेरे जैसे वस्त्र पहन लें।

राजा ने कहा, इन वस्त्रों से क्या बाधा पड़ेगी ? हम संगीत सुनते चलते हैं, वस्त्र क्या करेंगे ?

संगीतज्ञ ने कहा कि वहुत कुछ करेंगे। आप वहाँ भी राजा वने रहेंगे। संगीत जो हम सुनना चाहते हैं वह नहीं सुना जायेगा। जीवन में जो भी महत्त्वपूर्ण है, वह सम्राटों की भाँति नहा, याचकों की भाँति उपलब्ध होता है। वहाँ हाथ फैलाकर पहुंचना पड़ता है और इन वस्त्रों में, आप हाथ नहीं फैला सकेंगे। ये वस्त्र सिंहासनों पर बैठने के आदी हैं। ये धूल में उस गरीव संगीतज्ञ के द्वार पर न बैठ सकेंगे।

राजा राजी हो गया। उसने दरिद्र के वस्त्र पहने और वे दोनों, रात उतरने को थी, सांझ होने को थी, संगीतज्ञ के द्वार पर पहुँच गये। राजा का संगीतज्ञ अपने साथ अपनी वीणा ले गया था। वे दोनों द्वार पर वैठ गये।

उसने द्वार पर वीणा बजानी शुरू कर दी। उसने वीणा पर वही बजाना शुरू कर दिया जो उस संगीतज्ञ के लिए सबसे प्यारा था, जिसमें उसकी कुशलता थी, लेकिन बीच-बीच में दो-चार भूलें जानकर कीं कि उस संगीतज्ञ ने द्वार खोल लिया और कहा—कौन बजा रहा है, कौन गलत बजा रहा है।

उस संगीतज्ञ ने कहा – मैं, और ज्यादा नहीं जानता हूँ। जैसा जानता हूँ, बजा रहा हूँ। कोई बता दे तो मैं सीखने को हमेशा तैयार हूँ।

वह संगीतज्ञ अपनी वीणा उठा लाया और उसने बजाना शुरू कर दिया। राजा तो मंत्रमुग्ध हो गया। जब बज चुकी वीणा तो उसने कहा, शायद तुमने पहचाना नहीं कि मैं सम्राट् हूँ, जिसने तुम्हें बुलाया था और आखिर देखो, मैंने सुन लिया।

उस संगीतज्ञ ने कहा, यह बात और है। मैं एक याचक की भाँति नहीं आया हूँ, मुझे बुलाया नहीं गया। फिर तुमने वह अवसर, वह 'सिचुएशन', वह परिस्थिति पैदा कर दी कि मेरे भीतर भाव जग गये और मैं बजाने लगा। मुझे आदेश नहीं दिया गया है।

परमात्मा के द्वार पर भी ऐसे ही जाना होता है। ऐसे ही कोई आदेश नहीं देने पड़ते हैं। एक प्रार्थी का भाव लेकर, राजाओं के वेश में नहीं, दीन-हीन विनम्रता से हाथ फैलाये हुए, सिंहासनों पर बैठे हुए नहीं और जितनी दीनता से—क्राइस्ट कहते थे, 'पुअर इन स्प्रिट', जो इतने भाव से दीन, असहाय, विनम्र, आतुर और याचक होकर उस द्वार पर खड़ा हो जाता है, फिर जो भी उससे बनता है, जैसे भी भूल-चूक भरे शब्दों में प्रार्थना करने लगता है, जैसे भी बनता है, भूल-चूक भरी वीणा बजाने लगता है, तब वे द्वार खुल जाते हैं उस परम संगीतज्ञ के और वह अपनी वीणा उठाकर आ जाता है। लेकिन इतनी दूर तक हमें यात्रा करनी पड़ती है। इस यात्रा के लिए हमें तैयार हो जाना जरूरी है।

जीने का और एक क्रम

द्वितीय प्रवचन

आधी रात बीत गयी थी और सुकरात घर नहीं लौटा था। उसके मित्र और उसके शिष्य चिन्तित हो गये। सुबह से ही वह बाहर था और आधी रात तक न गाँव में देखा गया था, न गाँव में किसीको मिला था और अब तक उसका कोई पता नहीं। फिर आधी रात को वे उसे ढूँढने निकले। गाँव की गलियों-गलियों में खोज डाला। चाँदनी रात थी। धीरे-धीरे उसे गाँव के बाहर खोजते थे। सुबह होने को थी। वह एक वृक्ष के पास बैठा हुआ मिला। रात के अन्तिम तारे डूबने के करीब थे और उसकी आँखें आकाश की तरफ लगी हुई थी। वह जैसे पत्थर हो गया हो, रातभर की सर्दी में जैसे जम गया हो! मित्रों ने जाकर उसे हिलाया। वह जैसे इस पृथ्वी पर न था, कहीं और था, किसी दूसरे लोक में, शायद उन तारों के पास जिन्हें वह रातभर देखता रहा। उसने आँखें नीचे की। वह हिला। उसने मित्रों को पहचाना और कहा, 'कितना समय बीत गया होगा?'

मित्रों ने कहा, 'पूरी रात बीत चुकी है। दूसरी सुबह होने के करीब है। तुम सुबह से निकले हो, कहाँ थे?'

सुकरात ने कहा, 'मैं यहीं आ गया। सुबह के उगते सूरज को देखा, दोपहर होते देखा, साँझ का सूरज डूबते देखा। सूरज के साथ दिनभर यात्रा करता रहा, फिर रात आ गयी, फिर चाँद आ गया, फिर सितारे आ गये, फिर उसने मुझे भटका लिया, फिर मैं उनमें डूब गया और मुझे पता भी नहीं कि कितना समय बीत गया है।'

उसके मित्र पूछने लगे, 'क्या था चाँद-तारों में? ऐसा क्या था सूरज में जो चौबीस घण्टे बीत गये और हमें कुछ पता नहीं?'

सुकरात ने कहा, 'आश्चर्य तुम्हें होता है, मुझे होना चाहिए। क्या नहीं है चाँद-तारों में, क्या नहीं है सूरज में जो आदमी को मंत्र-मुग्ध न कर ले, उसे विस्मय से विमुग्ध न कर ले, उसे अपने पास न बुला ले, अपने गीत में, अपने संगीत में न डुबा ले। क्या नहीं है? मुझे पूछना चाहिए, उल्टे तुम्हीं मुझसे पूछते हो कि क्या है चाँद-तारों में। जो रात बीत गयी और तुम्हें पता नहीं। धन्य है वे लोग जो चाँद-तारों में, वृक्षों में, समुद्रों में, पहाड़ों में, मनुष्य की आँखों में कुछ खोज लेते हैं, जिन्हें वहाँ कुछ दिखायी पड़ जाता है। शायद वे ही लोग आँखों वाले हैं, बाकी सारे लोग अंधे हैं।'

हम भी अंधे हैं। हमें भी कुछ दिखायी नहीं पड़ता है। यह हमारा अंधापन

कैसे निर्मित हो गया है, उस सम्बन्ध में थोड़ी बात जान लेना जरूरी है और इस अंधेपन को हम कैसे तोड़ें, यह भी समझ लेना आवश्यक है। क्योंकि कोई भी व्यक्ति साधना के जगत् में प्रवेश करने में असमर्थ होगा, अगर वह जीवन के प्रति एक बुनियाद को लेकर चलता है। हमें फूल ही दिखायी नहीं पड़ते तो परमात्मा कैसे दिखायी पड़ सकता है? हमें सागर का गर्जन भी नहीं सुनायी पड़ता तो प्रभु की वाणी कैसे सुनायी पड़ सकती है? हमें चांद-तारे ही दिखायी नहीं पड़ते तो हमें वह रोशनी ही कैसे मिल सकती है, जो जीवन का प्राण है? हमें कुछ भी नहीं दिखायी पड़ता है। हम करीब-करीब सोये-सोये गुजर जाते हैं। आँख बन्द किये गुजर जाते हैं। जन्म से लेकर मृत्यु तक जीवन की लहरें कहीं भी हमारे प्राणों को आंदोलित नहीं करतीं, कोई संवेदना हमें नहीं पकड़ लेती है, कोई हमें मंत्र-मुग्ध नहीं कर पाता है।

धर्म का पहला सम्बन्ध जीवन-रहस्य के अनुभव से है। वह जो जीवन की मिस्ट्री है और समग्र जीवन ही रहस्यपूर्ण है—एक छोटे-से पत्थर से लेकर आकाश के सूरज तक, एक छोटे-से बीज से लेकर आकाश को छूते वृक्षों तक, सभी कुछ, जो भी है, अत्यन्त रहस्यपूर्ण है, लेकिन वह रहस्य हमें दिखायी नहीं पड़ता। क्योंकि रहस्य को देखने के लिए जैसी पात्रता चाहिए, वह शायद हमने अर्जित नहीं की है। जैसी 'रिसेप्टीविटी' चाहिए, जैसी ग्राहकता चाहिए, हृदय के द्वार जैसे खुले चाहिए, वे शायद हमारे हृदय के द्वार खुले नहीं, बंधे हैं, शायद हम किसी कारागृह के भीतर बैठे हैं, उन खिड़कियों और द्वारों को बन्द करके और तब अगर हमारा जीवन अन्धकारपूर्ण और उदासी से भर गया हो, गन्दी हवाओं ने और दुर्गन्ध ने हमें घेर लिया हो, चिन्ताओं ने और तनावों ने हमारे घर में निवास बना लिया हो तो आश्चर्य क्या। यह स्वाभाविक है, यह होगा।

कैसे हमने जीवन के प्रति यह जड़ता अंगीकार कर ली है और फिर हम पूछते हैं ईश्वर है? और फिर हम पूछते हैं आत्मा अमर है? और फिर हम सारे प्रश्न पूछते हैं, लेकिन एक प्रश्न पूछना हम भूल जाते हैं—हमारे पास जीवन के रहस्य को देखने की आंखें हैं या नहीं? जीवन के रहस्य को देखने की आँख मनुष्य रोज-रोज खोता चला गया। जितने हम सभ्य होते गये हैं, उतनी हमने जीवन के रहस्य को देखने की आँख खो दी है। जितने हम समझदार हो गये हैं, जितना हमारा ज्ञान बढ़ता गया है, उतना हमने जीवन का जो विस्मय है, जीवन में जो अबूझ है, जीवन में जो पहेली की तरह है, जिसका कोई सुलझाव नहीं, उस सबसे हमने अपने को हटा लिया है, उसकी तरफ पीठ कर ली है। जीवन एक अबूझ पहेली है इसे हम भूल गये हैं। हमारे ज्ञान में, हमारी जानकारी

में, हमारी समझ में हम ऐसा समझने लगे हैं कि आदमी ने यह निर्णय ले लिया है कि करीब-करीब सब हमें ज्ञात है और जो ज्ञात नहीं है वह भी ज्ञात हो जायेगा। जीवन में कुछ भी अज्ञेय नहीं है, कुछ भी 'अननोएबल' नहीं है, सब जाना जा सकता है। यह सत्य से बिलकुल ही विपरीत बात है। जीवन में सब कुछ अज्ञेय है और जिसे हम जानना समझते हैं, वह भी जानना नहीं है। जीवन में कुछ भी नहीं जाना जा सकता है। एक छोटे पत्ते से लेकर जो कुछ दिखायी पड़ता है, वह सब बहुत अज्ञात, बहुत अज्ञेय, बहुत अबूझ, बहुत रहस्यपूर्ण है। वह रहस्य कभी भी नहीं तोड़ा जा सकेगा। जो हम थोड़ा-सा जान लेते हैं वह जानना परिचय है, ज्ञान नहीं, एक्वेंटेंस है। परिचय को हम ज्ञान समझ लेते हैं। थोड़े दिनों में हम कुछ जान लेते हैं।

इस सरू के वन में हम बैठे हैं, इस सागर के तट पर। जब आप आये थे तो इन सरू के वृक्षों में, इस सागर के तट पर थोड़ा-सा अनजाना मालूम पड़ा होगा। आज आप परिचित हो गये हैं, कल आप और परिचित हो जायेंगे, परसों और। जाते-जाते यह सरू का वन आपको दिखायी नहीं पड़ेगा, यह सागर का गर्जन आपको सुनायी नहीं पड़ेगा, लगेगा जानते हैं। जो यहां निकट रहते हैं उन्हें यहां कुछ भी नहीं दिखायी पड़ेगा। लोग काश्मीर-यात्रा करने जाते हैं। जो वहां रहते हैं उन्हें वहां कुछ भी दिखायी नहीं पड़ता। हिमालय की पहाड़ियों की, लोग दूर से पागल की तरह, यात्रा करते हैं। जो वहां रहते हैं उन्हें वहां कुछ भी दिखायी नहीं पड़ता है। क्या वे जानते हैं? नहीं, वे परिचित हो गये हैं निकट रहने से। रोज-रोज देखने से उन्हें भ्रम हो गया है कि हम जानते हैं।

परिचय ज्ञान का भ्रम पैदा कर देता है। मनुष्य परिचित होता चला जा रहा है जगत से और इसीको वह समझ रहा है कि हम जान रहे हैं। यह जानने का भ्रम, यह नॉलेज एटीट्यूड, कि हमें पता है, जीवन के सारे रहस्य को खण्डित कर रहा है। साधक को इस जानने के भ्रम को तोड़ देना चाहिए और विस्मय को उपलब्ध कर लेना चाहिए। क्या आप इन वृक्षों के पास इस भांति बैठ सकते हैं जैसे आप पहली बार ही एक अज्ञात लोक में उतर आये हों, जहां कुछ भी परिचित नहीं है? क्या आप सागर के गर्जन को ऐसा सुन सकते हैं, जैसा पहली बार, प्रथम बार ही आपने सुना और जाना हो? पृथ्वी पर जो पहला आदमी उतरा होगा, उसने पृथ्वी को जैसा देखा होगा, क्या वैसा देख सकते हैं? पहला आदमी चाँद पर उतरेगा और जैसा चाँद को देखेगा विस्मय-विमुग्ध होकर, अवाक् होकर, मौन होकर, सब अपरिचित होगा, अनजाना, क्या वैसा पृथ्वी पर अपने आप को खड़े हो सकते हैं? अगर खड़े हो सकते हैं, तो

साधक की पहली सीढ़ी पार कर ली गयी। इन तीन दिनों में मैं आपसे यह प्रार्थना करूँगा कि यहाँ इस भाँति खड़े हों, जैसे आपकी नौका टकरा गयी हो नारगोल के तट पर और अनजानी जगह में आप उतर गये हों जहाँ कुछ भी परिचित नहीं है, सव अपरिचित है—रात भी, वृक्ष भी, तट भी, आकाश भी सव अपरिचित हैं और सचाई यही है कि जहाँ हम जन्म लेते हैं हम कुछ भी जानते हुए नहीं आते, हम विलकुल अनजान पैदा होते हैं, विलकुल स्ट्रेंजर, विलकुल अजनवी। जन्म एक अजनवी लोक में खड़ा कर देता है और जव हम मरते हैं तव भी हम विना कुछ जाने विदा हो जाते हैं। आदमी क्या जानकर समाप्त होता है ? मरते क्षण भी हमारी चेतना वहीं होती है, जहाँ जन्म के क्षण में थी। हम कुछ भी नही जान पाते हैं और विदा हो जाते हैं।

यह जो जन्म और मृत्यु के वीच में हमें जानने का भ्रम पैदा हो जाता है, वह परिचय का भ्रम है। वाप सोचता है, मैं वच्चे को जानता हूँ, पत्नी सोचती है मैं पति को जानती हूँ। मित्र सोचता है, मैं मित्र को जानता हूँ। कोई भी किसीको नही जानता। इस अनजानेपन को, इस स्ट्रेंजनेस को, इस अजनवीपन को पकड़ लेना है, पहचान लेना है। इस पर ध्यान को ले जाना है, यह हमारे मेडिटेशन का हिस्सा वन जाय, यह हमारे ध्यान, चिन्तन और मनन का केन्द्र वन जाय कि हम कुछ भी नहीं जानते। क्या यह वन सकता है ? यह वन सकता है, अगर हम थोड़ा साहस करें और अपने उस अहंकार को छोड़ सकें जो जानने ने पैदा कर दिया है। मनुष्य के भीतर गहरी-से-गहरी इगो, गहरा-से-गहरा जानने का अहंकार है। किसीसे भी पूछिये—ईश्वर है ?

वह कहेगा—हाँ, ईश्वर है या कहेगा कि ईश्वर नहीं है और दोनों हालतों में वह यह कहेगा कि मैं जानता हूँ। शायद ही कोई आदमी खोजने से मिल जाय जो चुप रह जाय और कहे कि मैं नहीं जानता हूँ। लेकिन चाहता हूँ मैं कि आप वह आदमी वनें जो कह सके निर्भयता से—कि मैं नहीं जानता हूँ। पूछें अपने से—हम जानते हैं कुछ ? गहराई में अपने से यह प्रश्न उठायें कि जानता हूँ मैं कुछ ?

क्या जानता हूँ ? और तो जानना दूर है, स्वयं को भी नहीं जानता हूँ, अपने को भी नहीं जानता हूँ। नहीं जानता हूँ उसे, जो कि मैं हूँ। फिर मैं और क्या जान सकूँगा ? जो मेरे निकटतम है, जो मेरे भीतर है वह भी अपरिचित और अनजान है तो जो मेरे वाहर है और मुझसे दूर, वह कैसे परिचित और जाना हुआ हो सकता है ? आप अपने को जानते हैं, शायद न पूछा हो कभी आपने अपने से। हम कुछ चीजें स्वीकार ही कर लेते हैं कि—'मैं जानता हूँ अपने

को' और इस भाँति चलने और जीने लगते हैं जैसे जानते हों। हमने कभी प्रश्न ही नहीं पूछा, और प्रश्न ही नहीं पूछा, तो यात्रा कैसे आगे बढ़ सकती है ?

पहला प्रश्न जो प्रत्येक को अपने से पूछ लेना चाहिए वह यह कि 'क्या मैं अपने को जानता हूँ ?' मैं कौन हूँ, मैं क्या हूँ, मैं कहाँ से हूँ, मैं कहाँ के लिए हूँ ? लेकिन किसी बात का कोई उत्तर नहीं। न ज्ञात है कि मैं कौन हूँ, न ज्ञात है कि मैं क्या हूँ, न ज्ञात है कि मैं कहाँ से हूँ, न ज्ञात है कि मैं कहाँ के लिए जा रहा हूँ। इन चार बुनियादी प्रश्नों का कोई उत्तर नहीं, लेकिन हम स्वीकार कर चुके हैं कि हम अपने को जानते हैं।

एक सुबह कोई तीन बजे होंगे। शॉपेनहार एक छोटे-से बगीचे में गया हुआ था। रात थी। अभी अँधेरा था। बगीचे का माली हैरान हुआ कि इतनी रात गये कौन आ गया है। उसने अपनी लालटेन उठायी, अपना भाला उठाया और गया बगीचे में। शॉपेनहार वहाँ टहलता है वृक्षों के पास और कुछ अपने से ही बातें कर रहा है। उस माली को शक हुआ कि जरूर कोई पागल घुस आया है, अकेला अपने से बातें कर रहा है। उसने दूर से ही खड़े होकर आवाज दी और पूछा, 'कौन हो, कहाँ से आये हो, किसलिए आये हो, क्या चाहते हो ?'

शॉपेनहार जोर से हँसने लगा और उसने कहा, 'तुम ऐसे क्यों प्रश्न पूछते हो जिनका उत्तर आज तक कोई आदमी नहीं दे पाया। पूछते हो कौन हो ? जिन्दगी बीत गयी पूछते-पूछते, पर अभी मुझे उत्तर नहीं मिला कि कौन हूँ। पूछते हो कहाँ से आये हो ? आज तक कोई आदमी नहीं बता सका कि वह कहाँ से आया। मैं भी असमर्थ हूँ। पूछते हो, किसलिए आये हो ? उसका भी मुझे कोई पता नहीं कि किसलिए आया हूँ।'

निश्चित ही उस माली ने समझा होगा कि पागल है यह आदमी, जिसे इतना भी पता नहीं। लेकिन माली पागल था या वह आदमी जिसे पता नहीं था। कौन था पागल ?

अगर आपको पता है या आपको भ्रम है कि आपको पता है तो आप पागल हो सकते हैं, लेकिन अगर आपको पता नहीं है तो यह मनुष्य की स्थिति है, यह मानवीय नियति है कि आदमी को पता नहीं है। इसमें पागलपन का कोई सवाल नहीं है।

लेकिन कहीं हम पागल न मालूम पड़ने लगें, इसलिए हमने कुछ व्यवस्था कर ली है, कुछ अपने को पहचानने और जानने का आयोजन कर लिया है, हमने कुछ उपाय कर लिया है जिससे ऐसा लगे कि हम अपने को जानते हैं।

हमने अपने नाम रख लिये, अपनी जाति बना ली है, अपना धर्म बना लिया है, अपना देश बना लिया है, हमें इंगित किया जा सके कि कौन हूँ। तो हमारा नाम है, हमारी जाति है, हमारा धर्म है, हमारा देश है, हमारे माँ-बाप हैं, उनके नाम हैं, उनकी वंशपरम्पराएँ हैं और हमने कुछ इन्तजाम कर लिया है जिस भाँति यह पहचाना जा सके कि मैं कौन हूँ। और हमारी सारी व्यवस्था झूठी है, कल्पित है और सपने जैसी है। क्या है नाम किसका, क्या है किसीकी जाति, क्या है किसका धर्म ? कोई तो है देश किसका। लेकिन हमने जमीन पर भी झूठी रेखाएँ खींच रखी हैं—भारत की और चीन की, रूस की और अमरीका की। झूठी रेखाएँ, जो जमीन पर कहीं भी नहीं हैं, ताकि हम कह सकें कि मैं यहाँ से हूँ और हमने आदमी के आसपास भी झूठे नाम और लेबल चिपका रखे हैं। कोई राम है, कोई कृष्ण है, कोई कोई है। वे नाम भी बिलकुल झूठे हैं। आदमी कोई नाम लेकर पैदा नहीं होते और हमने उन्हें जातियों के नाम भी चिपका रखे हैं। वह नाम भी बिलकुल झूठे हैं। आदमी किसी जाति में पैदा नहीं होता। सब जातियाँ आदमी पर ऊपर से थोपी जाती हैं और हमने माँ-बाप के नाम भी अपने साथ जोड़ रखे हैं। न उनका कोई नाम था, न उनके माँ-बाप का कोई नाम था, लेकिन हमने एक छोटा-सा कोना बना लिया है ज्ञान का, और ऐसा भ्रम पैदा कर लिया है कि हम अपने को जानते हैं। इसी भ्रम में हम जीते हैं और नष्ट हो जाते हैं। साधक को यह भ्रम तोड़ देना चाहिए, यह कोना उजाड़ देना चाहिए। उसे जान लेना चाहिए ठीक-ठीक कि मेरा कोई नाम नहीं है, मेरी कोई जाति नहीं है, मेरा कोई देश नहीं है, मेरा परिचय नहीं, मैं बिलकुल अज्ञात हूँ। जैसे ये हवाओं के झोंके अज्ञात हों, जैसे ये वृक्ष अज्ञात हों, जैसे ये आकाश के चांद-तारे अज्ञात हों, जैसे यह सागर का पानी अनाम, अपरिचित और अज्ञात है, वैसे ही आदमियों के जीवन की लहरें भी अज्ञात हैं, अनजान हैं, अपरिचित हैं। लेकिन न केवल आदमियों ने ऊपर का परिचय बना रखा है, भीतर का भी परिचय बना रखा है। किसीसे पूछते हैं कि आपके भीतर कौन है, तो वह कहेगा मेरे भीतर आत्मा है। आत्मा अमर है। मेरा पिछला जन्म था। कर्मों के फल हैं। आगे जन्म होंगे। स्वर्ग है, नर्क है। वे लोग शुद्ध हो जाते हैं, वे मोक्ष चले जाते हैं। हमने अज्ञात में, अंधेरे में न मालूम क्या-क्या लिख लिया है। यह ज्ञान भी आदमी का पकड़ा हुआ और कल्पित ज्ञान है। यह ज्ञान भी हमें पता नहीं, कुछ भी पता नहीं है। लेकिन इन शब्दों को हम दोहराये चले जाते हैं। इन शब्दों को हम पकड़कर बैठ जाते हैं। इन शब्दों का हम ध्यान करते हैं।

एक संन्यासी कुछ दिन पूर्व मेरे पास आये। मैंने उनसे पूछा कि क्या ध्यान करते हैं, क्या साधना करते हैं? वे कहने लगे, बैठकर एकांत में यह सोचता हूँ कि मैं सत्-चित्-आनन्दस्वरूप परमात्मा हूँ। मैं शुद्ध-बुद्ध आत्मा हूँ। मैं अमृत जीवन हूँ। मेरी कोई मृत्यु नहीं। मैं शरीर नहीं हूँ। मैं मन नहीं हूँ। मैं आत्मा हूँ। यह हम ध्यान करते हैं। यह हम मेडिटेशन करते हैं।

मैंने उनसे कहा—ये बातें आपको पता हैं, ये बातें आपको ज्ञात हैं, यह आपका अनुभव है, यह आपका ज्ञान है कि आप शुद्ध-बुद्ध आत्मा हैं या कि सुने हुए शब्द और सीखे हुए शब्द हैं? फिर मैंने उनसे पूछा, अगर आपको यह ज्ञात है कि आप शुद्ध-बुद्ध आत्मा हैं तो रोज-रोज इसे बैठकर दोहराने की क्या जरूरत है? जो ज्ञात है उसे कभी कोई दोहराता नहीं है। जो ज्ञात नहीं है उसे दोहरा-दोहराकर हम यह भ्रम पैदा करना चाहते हैं कि वह ज्ञात है। अगर यह मालूम है कि मैं परमात्मा हूँ, अगर यह पता है 'अहं ब्रह्मास्मि' कि मैं ब्रह्म हूँ तो इसे रोज-रोज दोहराने की क्या जरूरत है? कोई कभी नहीं दोहराता है, जिसे जानता है। जिसे हम नहीं जानते हैं उसे हम दोहराते हैं। क्योंकि बार-बार दोहराने से यह भ्रम पैदा होना शुरू हो जाता है, हम परिचित हो जाते हैं शब्दों से। निरन्तर दोहराये जाने से परिचय पैदा हो जाता है। हम भूल जाते हैं कि पहली बार जब हमने कहा था तो हमें पता नहीं था। पचास बार कहने के बाद ऐसा लगता है कि हमें मालूम है। लेकिन पहली बार ही हमें जब ज्ञात नहीं था तो पचास बार दोहरा लेने से वह ज्ञात नहीं हो सकता है। रिपिटीशन कहीं भी नहीं ले जाता है सिवाय भ्रम के। अगर मुझे पहली बार ही पता नहीं था तो मैं हजार बार दोहराऊँ, इससे क्या होगा? झूठ हजार बार दोहराने से सच नहीं हो जाता और अज्ञान हजार बार दोहरा लेने से ज्ञान नहीं बन जाता। लेकिन हम दोहराते हैं, हम दूसरों को भी जब धोखा देना चाहते हैं तो हम दोहराने का उपाय करते हैं। अपने को भी धोखा देना चाहते हैं तो दोहराने का उपाय करते हैं।

एडल्फ हिटलर ने अपनी आत्मकथा में लिखा है कि ऐसा कोई भी असत्य नहीं है जिसे बार-बार दोहरा देने से सत्य न बनाया जा सके। ठीक ही लिखा है। कोई भी असत्य बार-बार दोहरा देने से सत्य प्रतीत होने लगता है। जितने सत्य हम जानते हैं वे इसी तरह दोहराये गये असत्य हैं जिनको दोहरा-दोहरा कर हमने सत्य मान लिया। हम कुछ भी मान सकते हैं। इसे बार-बार दोहरा लेने से, निरन्तर दोहरा लेने से भ्रम पैदा हो जाता है।

हमने शरीर का भी परिचय बना लिया है, हमने भीतर का भी परिचय

बना लिया है। न हमें शरीर का कोई पता है, न हमें भीतर का कोई पता है। अगर सत्य की दिशा में कोई भी कदम उठाना है तो प्राथमिक रूप से हमारा यह अज्ञान स्पष्ट हो जाना चाहिए। इस अज्ञान के स्पष्ट बोध से यात्रा हो सकती है, क्योंकि यह अज्ञान सत्य है। यह हमारा नहीं जानना एक तथ्य है, एक्चुएलिटी है। यह मैं आपको सिखा नहीं रहा हूँ कि आप नहीं जानते। न जानना हमारी वस्तुस्थिति है, लेकिन दुनिया में यह निरन्तर सिखाया जा रहा है कि आप अपने को इस भाँति जानें। ये बातें दोहरायें और उनको दोहराते रहें, दोहराते रहें। और दोहराने से आपको ज्ञान पैदा हो जायेगा।

हजारों वर्षों से आदमी को कुछ बातें दोहराने के लिए सिखायी गयी हैं। बैठकर दोहराओ कि मैं ईश्वर हूँ, मैं परमात्मा हूँ, मैं आत्मा हूँ, मैं यह हूँ, मैं वह हूँ। एक आदमी जीवन भर दोहराता है तो भ्रम पैदा हो जाता है कि 'मैं यह हूँ'। लेकिन जो बात पहले चरण में असत्य थी, वह अन्तिम चरण में सत्य नहीं हो सकती। मैं आपसे क्या कहना चाहता हूँ? भूलकर भी इस तरह की बातें आप मत दोहराना। इनमें ज्ञान का भ्रम पैदा होता है, ज्ञान पैदा नहीं हो सकता। पहली मनुष्य की वास्तविक स्थिति क्या है? चित्त की वास्तविक दिशा क्या है? स्टेटस माइंड क्या है हमारा? सीधी और साफ बात इतनी है कि हम नहीं जानते, हमें कुछ भी पता नहीं है। लेकिन आदमी अज्ञान को स्वीकार नहीं करना चाहता। आदमी का गहरे से गहरा जीवन अस्वस्थ है। वह यह कि वह अज्ञान को अस्वीकार करता है। हम लड़ने को तैयार हो जाते हैं, कोई अगर यह कह दे कि आप नहीं जानते हैं। सबसे बड़ी चोट हमारे अहंकार को यह लगती है जब कोई यह कह देता है कि आप नहीं जानते हैं या कोई कह देता है कि आप गलत जानते हैं। क्यों लगती है यह चोट? यह चोट भी शायद इसीलिए लगती है कि वह हमारी सचाई उघाड़ देता है जो हम छिपाये हुए हैं भीतर, जिसे हमने बहुत-से पर्दे ढाँक कर भीतर छिपा रखा है। कोई जरा-सा पर्दा उघाड़ देता है तो हम मुश्किल में पड़ जाते हैं। लड़ने पर उतारू हो जाते हैं, विवाद करने को तैयार हो जाते हैं। दुनिया भर के धर्म आज तक कौन सी लड़ाई करते रहे हैं? एक ही लड़ाई। हर धर्म यह दावा करता रहा है कि हम जानते हैं और अगर किसीने कह दिया कि नहीं, तुम नहीं जानते हो और गलत जानते हो तो तलवारें चलती हैं। जैसे कि तलवारें कोई प्रमाण हैं जानने का! जैसे कि हत्या कर देना कोई तर्क है, कोई आरगूमेंट है! जैसे कि मन्दिरों और मस्जिदों में आग लगा देना कोई साक्षी है, कोई विटनेस है, कोई गवाही है।

आदमी का अज्ञान गहरा है, अज्ञान बुनियादी है और उस अज्ञान के ऊपर की सारी बातें उसने चिपका रखी है। जरा-सा हवा का झोंका लगा और लेबुल उड़ने लगता है, तो वह क्रोध से भर जाता है। जरा कोई इनकार कर देता है और गुस्सा उभर आता है। लेकिन मैं आपसे कहना चाहता हूँ, अगर आपको जीवन के सत्य की तरफ़ कोई भी कदम उठाना है तो अपने अज्ञान की बुनियादी स्थिति का पहला स्वीकार, पहली स्वीकृति कि हम नहीं जानते हैं। हम कुछ भी नहीं जानते। क्यों इस पर मेरा इतना आग्रह है? क्योंकि तथ्य से सत्य तक जाया जा सकता है। सिद्धांतों से सत्य तक कभी नहीं जाया जा सकता। जो वास्तविक स्थिति है, जो एक्चुएलिटी है, जो मनुष्य की वास्तविकता है, उससे तो हम कहीं आगे बढ़ सकते हैं। और भी अगर यह स्मरण आ जाये कि हमारा अज्ञान है, हम नहीं जानते हैं तो फिर आप न हिन्दू रह जाते हैं न मुसलमान, न जैन, न ईसाई। सब ज्ञानियों के दल हैं। अज्ञानी का कौन सा धर्म हो सकता है, कौन सी फिलॉसफी हो सकती है, कौन सा शास्त्र हो सकता है? ज्ञानियों के शास्त्र हो सकते हैं, सिद्धांत हो सकते हैं, सम्प्रदाय हो सकते हैं। अज्ञानी का तो कुछ भी सम्प्रदाय नहीं हो सकता, कोई शास्त्र नहीं हो सकता। उसकी कोई गीता नहीं, उसका कोई कुरान नहीं, उसके कोई कृष्ण नहीं, उसके कोई महावीर नहीं। उसका तो एक ही कहना है कि मैं नहीं जानता हूँ। इसलिए वह दावेदार नहीं, उसका दावा नहीं, उसका कोई विरोध नहीं, उसका कोई विवाद नहीं। स्मरण रहे, जब तक ज्ञान का दावा है, तब तक विवाद से मुक्त कोई भी नहीं हो सकता। कोई कितना ही कहे कि मैं विवाद नहीं करता और उसको यह ख्याल है कि मैं जानता हूँ, वह विवाद में है। हर ज्ञानी विवाद में है। विवाद में रहेगा और विवाद में मरेगा। निर्विवाद वही हो सकता है, जिसे ज्ञान का भ्रम न हो। जैसे ही यह भ्रम टूट जाता है कि मैं जानता हूँ, एक ह्यूमिलिटी, एक विनम्रता पैदा होनी शुरू होती है जो अभूतपूर्व है, जिसका आपको कोई परिचय नहीं। आप बिलकुल एक छोटे बच्चे की भाँति हो जाते हैं। बूढ़े और बच्चे में क्या फर्क है? एक ही फर्क है कि बच्चा नहीं जानता है और बूढ़ा जानता है, लेकिन बूढ़ों का जानना झूठा है, बच्चों का न जानना सच है।

साधक फिर से बचपन को उपलब्ध हो जाता है। पोंछ देता है स्मृति को, फिर वहाँ खड़ा हो जाता है जहाँ बच्चे खड़े हैं। छोटे-छोटे बच्चों को साधारण से चमकदार पत्थर ऐसे विस्मय से भर देते हैं, एक छोटे पक्षी के गीत किन्हीं ऐसे लोकों को ले जाते हैं। एक छोटी-सी हिलती हुई पत्ती उन्हें किसी दूसरे जीवन में, किसी दूसरी अवस्था में प्रविष्ट करा देती है।

बना लिया है। न हमें शरीर का कोई पता है, न हमें भीतर का कोई पता है। अगर सत्य की दिशा में कोई भी कदम उठाना है तो प्राथमिक रूप से हमारा यह अज्ञान स्पष्ट हो जाना चाहिए। इस अज्ञान के स्पष्ट बोध से यात्रा हो सकती है, क्योंकि यह अज्ञान सत्य है। यह हमारा नहीं जानना एक तथ्य है, एक्चुएलिटी है। यह मैं आपको सिखा नहीं रहा हूँ कि आप नहीं जानते। न जानना हमारी वस्तुस्थिति है, लेकिन दुनिया में यह निरन्तर सिखाया जा रहा है कि आप अपने को इस भाँति जानें। ये बातें दोहरायें और उनको दोहराते रहें, दोहराते रहें। और दोहराने से आपको ज्ञान पैदा हो जायेगा।

हजारों वर्षों से आदमी को कुछ बातें दोहराने के लिए सिखायी गयी हैं। बैठकर दोहराओ कि मैं ईश्वर हूँ, मैं परमात्मा हूँ, मैं आत्मा हूँ, मैं यह हूँ, मैं वह हूँ। एक आदमी जीवन भर दोहराता है तो भ्रम पैदा हो जाता है कि 'मैं यह हूँ'। लेकिन जो बात पहले चरण में असत्य थी, वह अन्तिम चरण में सत्य नहीं हो सकती। मैं आपसे क्या कहना चाहता हूँ? भूलकर भी इस तरह की बातें आप मत दोहराना। इनमें ज्ञान का भ्रम पैदा होता है, ज्ञान पैदा नहीं हो सकता। पहली मनुष्य की वास्तविक स्थिति क्या है? चित्त की वास्तविक दिशा क्या है? स्टेटस माइंड क्या है हमारा? सीधी और साफ बात इतनी है कि हम नहीं जानते, हमें कुछ भी पता नहीं है। लेकिन आदमी अज्ञान को स्वीकार नहीं करना चाहता। आदमी का गहरे से गहरा जीवन अस्वस्थ है। वह यह कि वह अज्ञान को अस्वीकार करता है। हम लड़ने को तैयार हो जाते हैं, कोई अगर यह कह दे कि आप नहीं जानते हैं। सबसे बड़ी चोट हमारे अहंकार को यह लगती है जब कोई यह कह देता है कि आप नहीं जानते हैं या कोई कह देता है कि आप गलत जानते हैं। क्यों लगती है यह चोट? यह चोट भी शायद इसीलिए लगती है कि वह हमारी सचाई उघाड़ देता है जो हम छिपाये हुए हैं भीतर, जिसे हमने बहुत-से पर्दे ढाँक कर भीतर छिपा रखा है। कोई जरा-सा पर्दा उघाड़ देता है तो हम मुश्किल में पड़ जाते हैं। लड़ने पर उतारू हो जाते हैं, विवाद करने को तैयार हो जाते हैं। दुनिया भर के धर्म आज तक कौन सी लड़ाई करते रहे हैं? एक ही लड़ाई। हर धर्म यह दावा करता रहा है कि हम जानते हे और अगर किसीने कह दिया कि नहीं, तुम नहीं जानते हो और गलत जानते हो तो तलवारें चलती हैं। जैसे कि तलवारें कोई प्रमाण हैं जानने का! जैसे कि हत्या कर देना कोई तर्क है, कोई आरगूमेंट है! जैसे कि मन्दिरों और मस्जिदों में आग लगा देना कोई साक्षी है, कोई विटनेस है, कोई गवाही है।

आदमी का अज्ञान गहरा है, अज्ञान बुनियादी है और उस अज्ञान के ऊपर की सारी बातें उसने चिपका रखी हैं। जरा-सा हवा का झोंका लगा और लेबुल उड़ने लगता है, तो वह क्रोध से भर जाता है। जरा कोई इनकार कर देता है और गुस्सा उभर आता है। लेकिन मैं आपसे कहना चाहता हूँ, अगर आपको जीवन के सत्य की तरफ कोई भी कदम उठाना है तो अपने अज्ञान की बुनियादी स्थिति का पहला स्वीकार, पहली स्वीकृति कि हम नहीं जानते हैं। हम कुछ भी नहीं जानते। क्यों इस पर मेरा इतना आग्रह है? क्योंकि तथ्य से सत्य तक जाया जा सकता है। सिद्धांतों से सत्य तक कभी नहीं जाया जा सकता। जो वास्तविक स्थिति है, जो एक्चुएलिटी है, जो मनुष्य की वास्तविकता है, उससे तो हम कहीं आगे बढ़ सकते हैं। और भी अगर यह स्मरण आ जाये कि हमारा अज्ञान है, हम नहीं जानते हैं तो फिर आप न हिन्दू रह जाते हैं न मुसलमान, न जैन, न ईसाई। सब ज्ञानियों के दम्भ हैं। अज्ञानी का कौन सा धर्म हो सकता है, कौन सी फिलॉसफी हो सकती है, कौन सा शास्त्र हो सकता है? ज्ञानियों के शास्त्र हो सकते हैं, सिद्धांत हो सकते हैं, सम्प्रदाय हो सकते हैं। अज्ञानी का तो कुछ भी सम्प्रदाय नहीं हो सकता, कोई शास्त्र नहीं हो सकता। उसकी कोई गीता नहीं, उसका कोई कुरान नहीं, उसके कोई कृष्ण नहीं, उसके कोई महावीर नहीं। उसका तो एक ही कहना है कि मैं नहीं जानता हूँ। इसलिए वह दावेदार नहीं, उसका दावा नहीं, उसका कोई विरोध नहीं, उसका कोई विवाद नहीं। स्मरण रहे, जब तक ज्ञान का दावा है, तब तक विवाद से मुक्त कोई भी नहीं हो सकता। कोई कितना ही कहे कि मैं विवाद नहीं करता और उसको यह ख्याल है कि मैं जानता हूँ, वह विवाद में है। हर ज्ञानी विवाद में है। विवाद में रहेगा और विवाद में मरेगा। निर्विवाद वही हो सकता है, जिसे ज्ञान का भ्रम न हो। जैसे ही यह भ्रम टूट जाता है कि मैं जानता हूँ, एक ह्यूमिलिटी, एक विनम्रता पैदा होनी शुरू होती है जो अभूतपूर्व है, जिसका आपको कोई परिचय नहीं। आप बिलकुल एक छोटे बच्चे की भाँति हो जाते हैं। बूढ़े और बच्चे में क्या फर्क है? एक ही फर्क है कि बच्चा नहीं जानता है और बूढ़ा जानता है, लेकिन बूढ़ों का जानना झूठा है, बच्चों का न जानना सच है।

साधक फिर से बचपन को उपलब्ध हो जाता है। पोंछ देता है स्मृति को, फिर वहाँ खड़ा हो जाता है जहाँ बच्चे खड़े हैं। छोटे-छोटे बच्चों को साधारण से चमकदार पत्थर एसे विस्मय से भर देते हैं, एक छोटे पक्षी के गीत किन्हीं ऐसे लोकों को ले जाते हैं। एक छोटी-सी हिलती हुई पत्ती उन्हें किसी दूसरे जीवन में, किसी दूसरी अवस्था में प्रविष्ट करा देती है।

बच्चों के लिए सवेरा बहुत रंग से भरा हुआ, बहुत गीत से, बहुत ध्वनि से भरा हुआ मालूम पड़ता है। यह धूप बहुत स्वर्णिम मालूम पड़ती है। यह चाँदनी बहुत चाँदी जैसी मालूम पड़ती है। यह सब कुछ जो हमें अत्यन्त आवश्यक दिखायी पड़ता है, अति आसाधारण प्रतीत होता है, क्योंकि भीतर विस्मय की आँख है, जाननेवाले का दम्भ नहीं। जानने का दम्भ ही मनुष्य के आसपास दीवाल खड़ी कर देता है, खोल खड़ी कर देता है, लोहे की मजबूत दीवाल खड़ी कर देता है। आदमी उसके भीतर बन्द हो जाता है। फिर जगत् से उसके सम्बन्ध टूट जाते हैं। जीवन से उसका लेना-देना बन्द हो जाता है। सम्पदा बन्द हो जाती है। साधक को यह सम्पदा उपलब्ध कर लेनी है और जीवन से सम्पदा तभी आ सकती है, जब यह जानने की खोल टूट जाये। मैं तो मित्रों से कहता हूँ कि मैं अज्ञान सिखाता हूँ। ज्ञान बहुत सिखाया जा चुका। ज्ञान मनुष्य को कहीं भी नहीं ले गया, सिवाय उपद्रवों के। ज्ञान की शिक्षा मनुष्य को बहुत दी जा चुकी और मनुष्य उस शिक्षा से पतित हुआ और कहीं भी नहीं पहुँचा। परमात्मा और मनुष्य के बीच बाधाएँ खड़ी हुईं, परमात्मा और मनुष्य के बीच सीढ़ियाँ नहीं बन सकीं। ज्ञानी शायद ही कभी जीवन को जानने में समर्थ हो पाया है। नहीं जान सकते हैं। क्योंकि जानने का ख्याल इतने अहंकार से भर देता है कि सारी विनम्रता नष्ट हो जाती है। हृदय कठोर और सख्त हो जाता है। ज्ञानियों से ज्यादा कठोर आदमी खोजना कठिन है। ज्ञानियो से ज्यादा कठोर आदमी मिल ही नहीं सकते। ज्ञानियों ने इतनी हत्याएँ कीं और इतनी हत्याएँ करवायीं! ज्ञानी अत्यन्त कठोर है। ज्ञानी कठोर बनाता है।

एक घटना मुझे बहुत प्रीतिकर है। एक बहुत बड़ा मेला लगा हुआ है और उस मेले के पास ही एक कुएँ में एक आदमी गिर पड़ा और वह चिल्ला रहा है—मुझे निकाल लो, मुझे निकाल लो। मैं डूब रहा हूँ।

वह किसी तरह ईंटों को पकड़े हुए है, किसी तरह संभले हुए है। कुआँ गहरा है, लेकिन मेले में बहुत शोरगुल है कि किसीको सुनायी पड़े। लेकिन एक बौद्ध भिक्षु उस कुएँ के पास से निकला है। पानी पीने को झाँका है। नीचे से आवाज आ रही है। उसने झाँककर नीचे देखा। वह आदमी चिल्लाने लगा, भिक्षु जी मुझे बाहर निकाल लें। मैं मरा जा रहा हूँ। कोई उपाय करें। अब मेरे हाथ भी छूटे जा रहे हैं। उस भिक्षु ने कहा, क्यों व्यर्थ परेशान हो रहे हो निकलने के लिए। जीवन एक दुख है। भगवान् ने कहा जीवन दुःख है।

बुद्ध ने कहा है—जीवन दुख है। जीवन तो एक पीड़ा है। निकलकर भी क्या करोगे? सब दुख ही दुख है। फिर भगवान् ने यह भी कहा है कि जीवन में जो भी होता है वह पिछले जन्म के कर्म-फल के कारण होता है। तुमने किसीको किसी जन्म में गिराया होगा कुएँ में। इसलिए तुम भी गिरे हो। सबको अपना फल भोगना ही पड़ता है। फल को भोग लो तो कर्म से मुक्त हो जाओगे। व्यर्थ निकलने की कोशिश न करो।' वह भिक्षु तो पानी पीकर आगे बढ़ गया।

उस भिक्षु ने गलत बातें नहीं कहीं। जो शास्त्रों में लिखा है, वह जानता था। वह सामने मरता हुआ आदमी उसे दिखायी नहीं पड़ा, क्योंकि बीच में उसके जाने हुए शास्त्र आ गये। वह आदमी डूब रहा है, वह उसे दिखायी नहीं पड़ रहा है। उसे कर्म का सिद्धांत दिखायी पड़ रहा है। उसे जीवन की असारता दिखायी पड़ रही है। वह उस आदमी को उपदेश देकर आगे बढ़ गया। उपदेशक से ज्यादा कठोर कोई भी नहीं होता। वह आगे जा भी नहीं पाया है कि पीछे एक कन्फ्यूशियस को माननेवाला संन्यासी आ गया। उसने भी आवाज सुनी। उसने भी झाँककर देखा। उसने कहा, 'मेरे मित्र, कन्फ्यूशियस ने अपनी किताब में लिखा है कि हरएक कुएँ के ऊपर पाट होना चाहिए, दीवाल होनी चाहिए, ताकि कोई गिर न सके। तो कुएँ पर दीवाल नहीं है, इसलिए तुम गिर गये। हम तो कितने दिन से समझाते फिरते हैं गाँव-गाँव कि कन्फ्यूशियस ने कहा है, वही होना चाहिए। तुम घबराओ मत, मैं जाकर आंदोलन करूँगा। मैं लोगों को समझाऊँगा। हम राजा के पास जायेंगे। हम कहेंगे कि कन्फ्यूशियस ने कहा है कि हर कुएँ पर दीवाल होनी चाहिए ताकि कोई गिर न सके। हमारे राज्य में दीवालें नहीं हैं, लोग गिर रहे हैं।'

डूबते हुए आदमी ने कहा, 'यह सब ठीक है। लेकिन तब तक तो मैं मर जाऊँगा। पहले मुझे निकाल लो।'

उस संन्यासी ने कहा, 'तुम्हारा सवाल नहीं है। यह तो जनता-जनार्दन का सवाल है। एक आदमी के मरने-जीने से कोई फर्क नहीं पड़ता। सबका सवाल है। तुम अपने को धन्य समझो कि तुमने एक आंदोलन की शुरुआत करवा दी। तुम शहीद हो।' दुनिया के नेता इसी तरह लोगों को मूर्ख बनाते हैं कि तुम शहीद हो। तुम मर जाओ। इससे बड़ा आन्दोलन आयेगा, समाजवाद आयेगा, साम्यवाद आयेगा। दुनिया में लोकतन्त्र आयेगा। तुम मरो। एक-एक आदमी की कोई कीमत नहीं है। कीमत तो आदमियत की है और आदमियत कहीं भी नहीं है सिवाय शब्दों के। जहाँ भी मिलता है, आदमी मिलता है। आदमियत कहीं नहीं मिलती, ह्यूमैनिटी जैसी चीज कहीं भी नहीं है सिवाय

शब्दों के। शास्त्रों में लिखा है मनुष्यता। खोजने से हमेशा मनुष्य मिलता है, लेकिन शास्त्रों के माननेवाले कहते हैं कि मनुष्यता बचनी चाहिए। मनुष्य के बलिदान की कोई फिक्र नहीं, एक-एक मनुष्य का बलिदान हो जाये, लेकिन मनुष्यता बचनी चाहिए।

वह आदमी डूबता रहा, चिल्लाता रहा और वह कन्फ्यूशियस को मानने वाला भिक्षु जाकर मंच पर खड़ा हो गया। उसने मेले में हजारों लोग इकट्ठे कर लिये और कहा, 'ऊपर देखो, जब तक कुएँ पर पाट नहीं बनता तब तक मनुष्य जाति को बहुत दुख झेलने पड़ेंगे। हर कुएँ पर पाट होना चाहिए। अच्छे राज्य का यह लक्षण है। कन्फ्यूशियस की किताब में यह लिखा हुआ है।'

वह अपनी किताब खोलकर लोगों को दिखा रहा है। वह आदमी चिल्ला ही रहा है, लेकिन उस मेले में कौन सुने। एक ईसाई पादरी वहाँ से गुजरा है। नीचे से आवाज उसने सुनी है तो उसने जल्दी से अपने कपड़े उतारे। अपनी झोली में से रस्सी निकाली। झोली में वह रस्सी रखे हुए था। रस्सी नीचे फेंकी और कुएँ में कूद पड़ा और आदमी को निकाल कर बाहर लाया।

उस आदमी ने कहा, 'तुम ही एक आदमी मुझे दिखायी पड़े हो। एक बौद्ध भिक्षु निकल गया उपदेश देता हुआ। एक कन्फ्यूशियस को माननेवाला भिक्षु निकल गया, आन्दोलन चलाने चला गया है। वह देखो मंच पर खड़ा हुआ आंदोलन चला रहा है। तुम्हारी बड़ी कृपा है, तुमने बहुत अच्छा किया।'

वह ईसाई मिशनरी हँसने लगा। उसने कहा, 'कृपा मेरी तुम पर नहीं, तुम्हारी मुझ पर है। तुम कुएँ में न गिरते तो मैं पुण्य से वंचित रहता। जीसस क्राइस्ट ने कहा है, पता नहीं? सर्विस—सेवा ही परमात्मा तक पहुँचने का मार्ग है, मैं परमात्मा को पहुँच रहा हूँ। मैं इसी तलाश में रहता हूँ कि कहीं कोई कुएँ में गिर पड़े तो मैं कुएँ में कूद जाऊँ। कहीं कोई बीमार हो जाय तो मैं सेवा करूँ, कहीं किसी की आँखें फूट जायँ तो मैं दवा ले जाऊँ, कहीं कोई कोढ़ी हो जाय तो मैं इलाज करूँ। मैं तो इसी कोशिश में घूमता-फिरता हूँ, इसलिए रस्सी हमेशा अपने पास रखता हूँ कि कहीं कोई कुएँ में गिर जाय तो उसे बचा सकूँ। तुमने मुझ पर कृपा की है, क्योंकि बिना सेवा के मोक्ष पाने का कोई उपाय नहीं है। हमेशा ऐसी ही कृपा बनाये रखना, ताकि हम मोक्ष पा सकें। हमारी किताब में लिखा हुआ है।'

उस आदमी ने सोचा होगा कि शायद इसने मुझ पर दया की है तो वह गलती में था। इस आदमी से किसीको भी मतलब नहीं है। यह आदमी किसीको भी दिखायी नहीं पड़ता। सबकी अपनी किताबें हैं, अपने सिद्धान्त हैं।

सबका अपना ज्ञान है। मनुष्य और मनुष्य के बीच ज्ञान की दीवालें हैं, मनुष्य और वृक्षों के बीच ज्ञान की दीवालें हैं, मनुष्य और समुद्रों के बीच ज्ञान की दीवालें हैं, मनुष्य और परमात्मा के बीच ज्ञान की दीवालें हैं। साधक को ज्ञान की दीवाल बड़ी निर्दयता से तोड़ देनी चाहिए, गिरा देनी चाहिए। एक-एक ईंट गिरा देनी चाहिए और ऐसे खड़े हो जाना चाहिए, जैसे मैं कुछ भी नहीं जानता हूँ। तो जीवन से सम्बन्ध हो सकता है, अन्यथा नहीं। तो हम जुड़ सकते हैं, तो इसी क्षण सम्बद्ध हो सकते हैं, इसी क्षण सम्बन्ध हो सकता है, इसी क्षण। कौन रोकता है फिर, फिर कौन बाधा देगा ?

कबीर का लड़का था—कमाल। एक सुबह कबीर ने कहा—'जा जंगल से थोड़ी घास काट ले।'

कमाल जंगल गया। सुबह गया था, दोपहर हो आयी। कबीर रास्ता देख रहा है। सांझ होने लगी। फिर उसने कहा कि कमाल क्या करने लगा है। घास काटने भेजा था, जरूरत थी, गाय को खिलानी थी। फिर कबीर खोजते हुए जंगल में गया। वहाँ कमाल गले-गले घास के बीच में खड़ा है। हवाओं के झोंके घास को हिला रहे हैं। कमाल भी उसके साथ हिल रहा है। कबीर ने जाकर उसे पुकारा और कहा, 'पागल, यह क्या कर रहा है।'

उसने आँखें खोलीं, उसकी आँखें बन्द थीं। उसने कहा, 'मैं काटने में असमर्थ हो गया। मैं जब आया यहाँ, इतने आनन्द में घास झूमती थी। सूरज की ऐसी स्वर्णिम वर्षा हो रही थी, हवाएँ इतनी तेज थीं और घास इतने आनन्द में झूमती थी कि मैं भी झूमने लगा। मेरा भी सम्बन्ध हो गया घास से। तुम आये और मुझे हिलाया तो मुझे पता चला कि मैं कमाल हूँ। मैं तो सोच रहा था कि मैं भी घास का एक हिस्सा हूँ, मैं भी घास हूँ, फिर कौन किसको काटता, मैं तो घास हो गया।'

कबीर की समझ में शायद आया या नहीं आया, लेकिन कमाल ने कहा कि मैं तो घास हो गया। जब कोई व्यक्ति सागर के पास ऐसे बैठ जाय कि उसका कोई ज्ञान नहीं है तो थोड़ी देर में पायेगा कि वह सागर हो गया है। सम्बन्ध शुरू हो जायगा। वह वृक्ष के पास बैठ जाय, उसका कोई ज्ञान न हो, कोई दम्भ न हो, कोई अहंकार न हो, कोई इगो न हो, वह थोड़ी देर में पायेगा कि वह वृक्ष हो गया है। वह फूल के पास बैठ जाय, वह थोड़ी देर में पायेगा कि वह फूल हो गया है। एक सम्बन्ध है जो ज्ञान तोड़ता है, जो ज्ञान के कारण नहीं बन पाता। वह सम्बन्ध बन जाय तो जरूर चारों तरफ से वह खबर भेजने लगता है, जिसे हम प्रभु की खबर कहें। पक्षियों के गीत से वह

ध्वनि आने लगती है जो वेदों से नहीं आती। वृक्षों की काँपती टहनियों से वह आवाज आने लगती है जो कुरान में नहीं है, जो महावीर नहीं कह सकते, जो कोई वाणी नहीं कह सकती। वह मौन में प्रकट होनी शुरू हो जाती है। लेकिन उसके लिए पात्रता चाहिए। अज्ञानी का सरल, विनम्र हृदय चाहिए। ज्ञानी का-सा दम्भ और कठोर से मजबूत मन नहीं।

इसलिए पहली सीढ़ी पर आपसे यह कहना चाहता हूँ, अज्ञानी हो जायें, अज्ञानी। इसे जान लें, इसे पहचान लें और यह बड़े रहस्य की बात है कि जो अपने अज्ञान को पहचानता है, उसने ज्ञान की तरफ पहला कदम उठा लिया। वे लोग जो जान लेते हैं कि नहीं जानते हैं, जानने की तरफ उनकी गति शुरू हो गयी। वह किसी दिन जान भी सकेंगे, किसी दिन जानना भी हो जायेगा। लेकिन विनम्रता चाहिए जानने के लिए और विनम्रता अज्ञान के अतिरिक्त कहीं भी नहीं है, कहीं भी नहीं हो सकती। तो साधक के लिए पहला सूत्र है अज्ञान का बोध। इस बोध के लिए न तो शास्त्रों को पढ़ने की जरूरत है, क्योंकि जो शास्त्रों में पढ़ लेते हैं उन्हें यह बोध पाने में सिवाय कठिनाई के और कुछ भी नहीं होता। न इस बोध को प्राप्त करने के लिए किन्हीं गुरुओं के पास जाने की जरूरत है, क्योंकि गुरुओं के पास ज्ञान मिल सकता है। अज्ञान का बोध कैसे मिलेगा? न इस अज्ञान के बोध के लिए सत्संग की जरूरत है, क्योंकि वहाँ सब शब्द और सिद्धांत मिल सकते हैं। यह बोध कैसे मिलेगा? इस बोध के लिए तो एकांत में, अकेले में अपनी वस्तुस्थिति को समझने की जरूरत है। 'क्या मैं जानता हूँ', यह अपने से बार-बार पूछ लेने की जरूरत है। भीतर से उत्तर आयेगा कि नहीं, नहीं जानते। हो सकता है जाने हुए सिद्धांत बीच में खड़े हो जायें और कहें कि हाँ, जानते हो, थोड़ा उन सिद्धांतों को परख लेना—यह मैंने सुनके सीखे हैं, पढ़के सीखे हैं या मैं जानता हूँ। यह मैंने शास्त्र से सीखे हैं। यह शब्द है, सिद्धांत है या मेरी अनुभूति है, इतना उनसे पूछ लेना तो वह तत्क्षण गिर जायेंगे, खड़े नहीं रह सकेंगे। ज्ञान एकदम बेबुनियाद है, एक जरा से धक्के की जरूरत है कि जैसे ताश के पत्तों का महल गिर जाता है, ऐसे ही गिर जायेगा। ज्ञान बिलकुल कागज की नाव है। छोड़ो इसे पानी में और डूब जायेगी। ज्ञान हमारा है ही नहीं, सिर्फ हम बनाये हुए बैठे हैं कि है। जब तक हम माने हुए बैठे हैं तब तक वह है। जिस दिन हम आँख खोलकर पहचानेंगे उसी दिन वह नहीं हो जाता है और जिस दिन ज्ञान 'नहीं' हो जाता है, उस दिन फिर जीवन में प्रवेश का द्वार खुलता है।

आज की सुबह की चर्चा में एक ही बात आपसे कहना चाहता हूँ। अज्ञान

को उपलब्ध कर लें, अज्ञान का भाव बड़ी धन्यता है, बड़ी कृतार्थता है। छोड़ दें कचरे को जो जान लिया है। अज्ञान की अपनी गहराई है जो किसी ज्ञान में नहीं, क्योंकि ज्ञान कितना भी होगा, सब सीमित होगा। अज्ञान असीम हो सकता है, अज्ञान असीम है। ज्ञान कितना ही होगा, और आगे बढ़ाया जा सकता है। अज्ञान अनन्त है। उसमें और कुछ भी नहीं जोड़ा जा सकता। आप जानते हैं तो कुछ और जान सकते हैं। आप नहीं जानते हैं तो नहीं जानते हैं। उसमें कुछ जोड़ने-घटाने का उपाय नहीं। ऐसा जो ज्ञान का बोध है उसे ऑगस्टीन ने एक शब्द दिया था। उसने कहा था 'डिवाइन एग्नोरेंस,'—दिव्य अज्ञान। सच में ही अज्ञान की बड़ी दिव्यता है, क्योंकि अज्ञान में अहंकार के खड़े होने का कोई उपाय नहीं और जहाँ अहंकार नहीं है, वहीं दिव्यता शुरू हो जाती है और जहाँ अहंकार के खड़े होने का उपाय है, वहीं दिव्यता खण्डित हो जाती है। यह तो सुबह की थोड़ी-सी बात मैंने कही, इसे सोचें, परखें, पहचानें और अगर दिखायी पड़ता हो तो गिरा दें, ज्ञान के मकान को गिरा दें, ताकि अज्ञान का मन्दिर खड़ा हो सके। ज्ञान के सब मकान हैं, अज्ञान का अपना मन्दिर है। इस बात के बाद सुबह के ध्यान के लिए हम बैठेंगे। मैं सुबह के ध्यान के सम्बन्ध में दो-तीन बातें आपसे कह दूँ, फिर हम ध्यान के प्रयोग के लिए बैठेंगे।

ध्यान तो बड़ी सरल सी बात है। जो भी महत्त्वपूर्ण है, वह सरल ही हो सकता है। कठिनाई हमेशा असत्य के साथ होती है, सत्य के साथ कोई कठिनाई नहीं। ध्यान बड़ी सरल-सी बात है, एकदम सरल-सी बात है। कुछ भी करना नहीं है, थोड़ी देर को न करने की अवस्था में अपने को छोड़ देना है। न करने की अवस्था में 'स्टेटस् नाट डूइंग'। कुछ भी नहीं करना है, थोड़ी देर को छोड़ देना है। यह तो इतना अच्छा अवसर है यहाँ। इतनी सुन्दर जगह है यहाँ कि न करने को छोड़ना एकदम आसान है। न करने के क्या सूत्र होंगे ?

न करने का पहला सूत्र तो यह है कि मन में करने का कोई भाव न हो। हम ध्यान करने बैठते हैं तो एक भाव होता है कि मैं ध्यान कर रहा हूँ, पूजा कर रहा हूँ, प्रार्थना कर रहा हूँ, मैं कुछ कर रहा हूँ। करने का भाव तनाव पैदा करता है, टेंशन' पैदा करता है। जहाँ करने का भाव आये, तनाव आयेगा। करने के भाव के पीछे अशांति आयेगी ही। न करने के भाव के पीछे शांति आ सकती है, विश्रान्ति आ सकती है। पहली बात, अभी जब हम ध्यान के लिए बैठेंगे, हमारी

सारी भाषा करने की भाषा है ऐसा कहेंगे, गलत है कहना; क्योंकि ध्यान में करने जैसी कोई सम्भावना नही है। लेकिन हमारी सारी भाषा, मनुष्य की सारी भाषा करने की भाषा है, न करने की हमारे पास कोई भाषा नहीं है।

जापान में कोई डेढ़ सौ वर्ष पहले एक बहुत बड़ी मोनेस्ट्री थी, एक बहुत बड़ा आश्रम था। वहाँ कोई पाँच सौ भिक्षु साधना करते थे। सम्राट् उत्सुक हो गया उस आश्रम को देखने के लिए और वहाँ गया। दूर दूर जंगल में फैला हुआ वह आश्रम था, दूर-दूर फैली हुई कुटिया थी। एक-एक कुटी को दिखाने लगा भिक्षु, जो प्रधान था और बताने लगा, इस कुटी में हमारे भिक्षु भोजन बनाते है, इस कुटी में हमारे भिक्षु अध्ययन करते है, इस कुटी में गीत गाते हैं, यहाँ यह करते है, वहाँ वह करते है, वहाँ स्नान करते है। बीच में बड़ा भवन है आश्रम का, वह भिक्षु उस भवन के बाबत कुछ भी नही कहता है। राजा बार-बार पूछने लगता है कि ठीक है, ठीक है, लेकिन इस बड़े भवन में क्या करते है? यह बात सुनते ही वह भिक्षु चुप हो जाता, जैसे बहरा हो गया हो, जैसे उसे सुनायी नही पड़ता हो। फिर दूसरी कुटी के बाबत बताने लगता, फिर पूरा आश्रम घूम लिया गया और उस बड़े भवन के आसपास चक्कर लग गया, लेकिन उस बड़े भवन के सम्बन्ध में एक शब्द नहीं कहा। फिर वे द्वार पर आ गये और राजा विदा होने लगा और राजा ने कहा—मैं समझता हूँ, या तो मैं पागल हूँ या तुम। जो भवन मैं देखने आया था उसके सम्बन्ध में तुमने एक शब्द भी नही कहा। मैंने बार-बार पूछा, तुम बहरे हो जाते हो। इस बड़े भवन में क्या करते हो?

वह भिक्षु कहने लगा—बड़ी मुश्किल में डाल देते है आप। आप बार-बार पूछते है कि इस बड़े भवन में क्या करते हो। तो मै समझ गया कि आप करने ठेकी भाषा समझ सकते है; इसलिए मैंने बताया कि यहाँ हम स्नान करते है, यहाँ हम भोजन बनाते है, यहाँ हम भोजन करते है, यहाँ हम किताब पढ़ते है। मैंने करने की भाषा में बताया, मैने एक्शन की भाषा में बताया। अब रह गया बीच का भवन। बड़ी मुश्किल है। वहाँ हम कुछ भी नही करते। वहाँ तो जब कोई भिक्षु कुछ भी न करना चाहे, तो चला जाता है। वह हमारे ध्यान का भवन है। वह मैडिटेशन हाल है, और आप पूछते है, वहाँ क्या करते हो तो आप मुझे मुश्किल में डाल देते है। अगर मैं कहूँ कि हम वहाँ ध्यान करते है तो गलती होगी, क्योंकि ध्यान का करने से कोई सम्बन्ध नही है, वहाँ हम कुछ भी नही करते है।

यह जो ध्यान की बात कर रहा हूँ यह कुछ भी नही करने की बात है। आपने राम राम जपा होगा, उसको ध्यान कहा होगा। आपने माला फेरी होगी,

उसको ध्यान कहा होगा। आपने गायत्री पढ़ी होगी, उसको ध्यान कहा होगा। आपने नमोकार जपा होगा, उसको ध्यान कहा होगा। वह कोई भी ध्यान नहीं है। जब तक आप कुछ कर रहे हैं तब तक आप ध्यान में नहीं जा सकते, चाहे माला फेरते हों, चाहे राम राम जपते हों, चाहे गायत्री, चाहे नमोकार, चाहे कुछ और। जब तक आप कुछ कर रहे हैं तब तक आप ध्यान के बाहर हैं। जब आप कुछ भी नहीं कर रहे हैं, सब मौन, सब शान्त हो गया, सब शिथिल हो गया, करने का सारा यन्त्र चुप हो गया, तब आप ध्यान में प्रविष्ट होते हैं।

ध्यान एक अक्रिया है। तो यहाँ हम ध्यान में अभी जायेंगे तो कैसे जायेंगे ? अक्रिया में जाने का पहला सूत्र तो यह जान लेना है कि मैं कुछ भी नहीं कर रहा हूं। भाव में यह बात स्पष्ट हो जानी चाहिए कि मैं कुछ नहीं कर रहा हूं, मैं ना करने में डूबने वाला हूं। भाव के तल पर यह बोध कि मैं ना करने में बैठ रहा हूँ—मैं चुपचाप सिर्फ शिथिल होकर बैठ जाऊँगा, कुछ भी नहीं करूँगा। पहली बात।

दूसरी बात, आप शिथिल होकर बैठ जायेंगे तो भी हवाएँ तो बहती रहेंगी, हवाएँ तो शिथिल नहीं हो जायेंगी। पक्षी तो बोलते रहेंगे। वह कौवा बोल रहा है, वह आवाज देता रहेगा। सागर गर्जन करता रहेगा, वृक्षों के पत्ते हिलेंगे और आवाज होती रहेगी। यह सब तो होता रहेगा। आप निष्क्रिय हो जायेंगे, लेकिन यह सारा जगत् तो अपनी पूरी क्रिया में गतिमान होगा। इस सारी क्रिया के प्रति आप क्या करेंगे ? इस सारी क्रिया के प्रति आप जागरूक बने रहना। होश से भरे रहना, अवेअर बने रहना। यह कौवा बोले तो यह आपको सुनायी पड़ता रहे, यह सागर गर्जन करे तो आपको सुनायी पड़ता रहे। यह हवाएँ आयें और वृक्षों को हिलायें तो आपको सुनायी पड़ता रहे। यह जो चारों तरफ जो कुछ भी हो रहा है वह आपके बोध में, आपके जागरण में आपको अनुभव होता रहे, बस आप कुछ मत करना, सिर्फ सुनते रहना। और स्मरण रहे, जागना कोई क्रिया नहीं है। जब आप किसी क्रिया में होते हैं तब भीतर आपका जागरण सो जाता है। जब बिलकुल अक्रिया में होते हैं तो जागरण पूरा प्रकट हो जाता है। जागरण कोई क्रिया नहीं है, मनुष्य का स्वभाव है। कोई एक्ट नहीं है, कोई कर्म नहीं है, मनुष्य की चित्तदशा है। मनुष्य की चेतना है। तो सिर्फ सचेत, होश से भरे हुए, कांशस, चुपचाप मौन से इन वृक्षों के पास बैठे रहें। सांस चलती रहेगी तो साँस चुपचाप अनुभव करते रहें और सुनते रहें चारों तरफ जो भी सुनायी पड़ रहा है, उसे सुनते रहें। सुनते ही

सुनते आप हैरान हो जायेंगे। एक-दो क्षण भी मौन से सुनते ही भीतर गहरी शांति उतरनी शुरू हो जायेगी, थोड़ी देर में सब विलीन हो जायेगा, एक सन्नाटा भर भीतर रह जायेगा। उस सन्नाटे में कोई पक्षी बोलेगा तो उसकी गूँज सुनायी पड़ेगी, गूँज विलीन हो जायेगी, सन्नाटा और भी ज्यादा गहरा हो जायेगा। कोई चीज बाधा नहीं डालेगी। हर चीज जो चारों तरफ हो रही है, सहयोगी बन जायेगी, मित्र बन जायेगी। एक बार आप शिथिल और मौन होकर रह जायें, विचार अपने आप शान्त हो जायेंगे, विलीन हो जायेंगे। उन्हें शान्त करना नहीं पड़ता है, उन्हें हटाना भी नहीं पड़ता है। जो मौन में बैठकर चारों तरफ के जगत् के प्रति जागरूक हो जाता है, धीरे-धीरे उसके विचार अपने आप समाप्त हो जाते हैं। यह अभी और यहीं हो सकता है। ●

अस्तित्वहीन इयत्ता के क्षणों में

तृतीय प्रवचन

सुबह जो कुछ मैंने कहा है, उस सम्बन्ध में बहुत-से प्रश्न आये हैं।

एक मित्र ने पूछा है कि क्या सारा ज्ञान आध्यात्मिक जीवन में बाधा है? क्या शास्त्र व्यर्थ हैं? क्या सिद्धान्तों, दर्शनों को जो हम जानते हैं उनसे सत्य की दिशा में कोई भी अनुभव प्राप्त नहीं होता? ऐसे ही और भी कुछ मित्रों ने प्रश्न पूछे हैं।

एक छोटा-सा बालक अपने घर के बाहर खेल रहा था। सुबह का सूरज निकला है। सूरज की स्वर्ण जैसी किरणें घर के बगीचे में बरस रही हैं। सुबह की ताजी हवाएँ हैं, तितलियाँ फूलों पर उड़ रही हैं और वह बालक घास में लेटा हुआ खेल रहा है। तभी उसे ख्याल आया कि सूरज की इन नाचती किरणों को काश वह कैद कर ले, बन्द कर ले, अपने पास संचित कर ले। वह भीतर गया है और एक पेटी ले आया है। उसने सूरज की किरणों को बन्द कर लिया है उस पेटी में, हवा को बन्द कर लिया है और फिर खुशी से नाचता हुआ भीतर अपनी माँ के पास पहुँच गया है और उसने कहा—तुझे पता भी नहीं है कि मैं पेटी में क्या बन्द कर लाया हूँ। सूरज की नाचती हुई किरणें, सुबह की हवाएँ वह सब इसने बन्द कर लिया।

उसे पता भी नहीं कि जिसे उसने बन्द किया है वह बन्द नहीं किया जा सकता। उसे पता भी नहीं कि वह पेटी को भीतर ले आया है, सूरज की किरणें बाहर ही रह गयीं। उसकी माँ हँसने लगी और उसने कहा—खोल अपनी पेटी को, मैं भी देखूँ, तू किन किरणों को पकड़ लाया है; क्योंकि मैंने सुना नहीं है अब तक कि किरणें कोई पकड़कर ले आता है और मैंने सुना नहीं है कि कोई सुबह की हवाएँ पेटियों में बन्द हो जाती हैं।

उसने खुशी में और माँ को चमत्कृत करने के लिए पेटी खोली है और दंग खड़ा रह गया है। उसकी आँखों में आँसू आ गये हैं। उसकी पेटी में तो अंधकार है, वहाँ तो सूरज की कोई भी किरण नहीं है। वहाँ तो सुबह की कोई ताजा हवा नहीं है और वह रोने लगा है और कहने लगा है कि मैंने तो बन्द किया था, वह सब किरणें कहाँ गयीं?

मनुष्य भी सत्य के सागर के किनारे जीवन की जिन हवाओं को, प्रभु की जिन किरणों को अनुभव करता है, सोचता है—शब्दों की पेटियों में, शास्त्रों में बन्द कर ले। बड़े श्रम से ये पेटियाँ बन्द की जाती हैं, लेकिन जब भी कोई उन पेटियों को खोलता है तो वहाँ कोरे शब्दों के अतिरिक्त, खाली पेटियों के

अतिरिक्त कुछ भी नहीं मिलता। जीवन में जो भी महत्त्वपूर्ण है उसे बन्द करने का कोई भी उपाय नहीं है। बन्द करने के रास्ते कोई भी हों, शब्द भी अनुभवों को बन्द करने की पेटियों से ज्यादा नहीं हैं। जीवन जो जानता है, शब्दों में हम उसे कैद करके प्रकट करना चाहते हैं। कोशिश करते हैं कि उसे पकड़ लें जो हमने जाना और शब्दों में बाँध दें, लेकिन शब्द ही हाथ में रह जाते हैं। जिसे बाँधा था वह बन्धन के हमेशा बाहर है। परमात्मा को किसी भी बन्धन में बाँधने का कोई उपाय नहीं। मौन में तो उसे कहा जा सकता है, शब्दों में कहने का कोई मार्ग नहीं। शून्य में तो उसके अनुभव को पाया जा सकता है, लेकिन शास्त्रों से उसे निकाल लेने की कोई राह नहीं। लेकिन हम शास्त्रों से जो उपलब्ध करते हैं, सोचते हैं वह ज्ञान है, वह शब्द है कोरा। जिन्होंने उन शब्दों को कहा था उन्होंने सोचा होगा कि जो वे जान रहे हैं शायद शब्दों में बाँधा जा सके। उनकी करुणा है इसके पीछे, उनका प्रेम है इसके पीछे। मनुष्य जाति भी उस सबको जान ले जो कि उनको ज्ञात हुआ है। लेकिन नहीं, शब्दों में कुछ भी उतरकर नहीं आता है, जैसे खाली कारतूस हो। ऐसे सभी शब्द खाली कारतूस की तरह हैं जिनके भीतर कोई अनुभव बँधा हुआ नहीं आता है। आपके पास अपना अनुभव हो तो शब्द भी सार्थक हो जाते हैं, लेकिन आपके पास अपना अनुभव न हो तो शब्द खाली कारतूस हैं, उनमें कुछ भी नहीं है। उन शब्दों को इकट्ठा करते रहें, ब्रह्म को, अद्वैत को, आत्मा को, सच्चिदानन्द को। इन सब शब्दों को इकट्ठा करते रहें, इनका अम्बार लगा लें, इनकी तिजोरी भर लें और आपको सिर्फ भ्रम पैदा होगा कि आपने कुछ जान लिया है। आप कुछ जान नहीं सकेंगे और यह भ्रम बाधा है। इसलिए मैंने कहा : ज्ञान नहीं ले जाता परमात्मा के द्वार तक, बल्कि यह प्रतीति ले जाती है कि मैं नहीं जानता हूँ।

यह जानने का भ्रम शब्दों से पैदा हो जाता है। यह जानने का भ्रम शास्त्रों से पैदा हो जाता है, सिद्धान्तों से पैदा हो जाता है। जिस व्यक्ति को खोज करनी हो, उसे साहस करना पड़ता है। सत्य को पाना हो तो शब्दों को छोड़ने का साहस करना पड़ता है। हमारा ज्ञान शब्दों के जोड़ के अतिरिक्त और क्या है? इस ज्ञान को हमने अपने भीतर कम कर लिया है सिवाय इसके कि हमारी अस्मिता, हमारी इगो, हमारा अहंकार मजबूत हो गया हो। हमें लगने लगा है कि मैं कुछ हूँ, क्योंकि 'मैं' कुछ जानता हूँ। हमारे इस 'मैं' का पत्थर और भी भारी और वजनी हो गया है। हमने ये शब्द इकट्ठे कर रखे हैं, शायद इसीलिए कि मुझे ज्ञान हो सके कि मैं कुछ हूँ, मैं जानता हूँ। मैं अज्ञानी नहीं

हूँ। एक वात इस सम्बन्ध में कहूँ। जो भी वात आपके अहंकार को मजबूत करती हो, आप भलीभाँति जान लें कि वह जीवन-सत्य की खोज में दीवाल वन जायगी, वाधा वन जायगी, पत्थर वन जायगी—जो भी चीज आपके 'मैं' को मजबूत करती हो, घनीभूत करती हो और यह भ्रम पैदा करती हो कि मैं हूँ। एक समुद्र के तट पर जैसे हम आज यहाँ वैठे हैं, एक साँझ सूरज डूवता था और एक वाप अपने छोटे से वच्चे के साथ समुद्र के किनारे वैठा हुआ था। सूरज डूवने लगा। उस वाप ने सूरज की तरफ उँगली उठायी और सूरज से कहा 'गो डाउन, गो डाउन'—नीचे जाओ, नीचे जाओ।

सूरज तो नीचे जा ही रहा था। सूरज नीचे चला गया और डूव गया। वह वच्चा तो हैरान रह गया अपने वाप की ताकत देखकर। इतना शक्तिशाली पिता है उसका कि सूरज से भी कहता है कि गो डाउन तो सूरज भी नीचे चला जाता है। उसके वेटे ने अपने वाप की तरफ आँखें उठायीं, उसके कन्धे पकड़ लिये और कहा—मेरे पिता, इतने शक्तिशाली हैं आप, तो एक कृपा और करें। डू इट डैडी अगेन, डू इट अगेन, एक वार और करके दिखायें !

उस वाप ने वड़ी कठिनाई अनुभव की होगी। फिर समझदार लोग रास्ते निकाल लेते हैं। उसने कहा—यह ऐसा काम है कि दिन में एक ही वार किया जा सकता है। कल सांझ फिर करके दिखाऊँगा।

वाप वेटे के सामने ज्ञानी वन जाता है, शक्तिशाली वन जाता है। गुरु विद्यार्थी के सामने शक्तिशाली वन जाता है, ज्ञानी वन जाता है। वूढ़े वच्चों के सामने ज्ञान दिखाकर अपने अहंकार को वर लेते हैं। लेकिन जीवन को तो धोखा नहीं दिया जा सकता। हम अपने को जरूर धोखा दे लेते हैं। हमारा सारा ज्ञान ऐसा है जिसके पीछे सिर्फ एक वात की कोशिश है कि मैं यह दिखा सकूँ कि मैं कुछ हूँ। मैं जानता हूँ, मैं शक्तिशाली हूँ, मैं अज्ञानी नहीं, मैं कमजोर नहीं। और सच्चाई क्या है, हमारा ज्ञान और हम रेत पर खींची गयी रेखाओं की तरह विलीन हो जाते हैं। हमारा ज्ञान और हम सूखे पत्ते की तरह हवाओं में उड़ जाते हैं और समाप्त हो जाते हैं। हमारा ज्ञान और हम कागज के भवनों की तरह हैं जो जरा से झोंके में गिर जाते हैं। आदमी का ज्ञान भी क्या हो सकता है? आदमी के खुद के होने की भी क्या सामर्थ्य है, क्या शक्ति है ?

इस वड़े विराट् जगत् में आदमी क्या है, आदमी की सामर्थ्य क्या है ? चाँद-तारों को शायद ही पता हो कि आप हैं। चाँद-तारे वहुत दूर हैं, वृक्ष को भी शायद ही पता हो कि आप हैं। वृक्ष दूर, इस रेत को भी शायद ही पता है कि आप हैं। इस विराट् अस्तित्व में आपका, मेरा, हमारा मनुष्य का होना

क्या है ? लेकिन मनुष्य ने बहुत से झूठे अहंकार पोषित कर लिये हैं। उनमें एक अहंकार सबसे गहरा और बुनियादी यह है कि हम जीवन की सचाइयों को जानते हैं। जीवन की कोई सचाई हमें ज्ञात नहीं है। जीवन बहुत अज्ञात है।

एक मित्र ने पूछा कि यह हो सकता है कि बहुत बड़ी-बड़ी चीजें हमें ज्ञात न हों, लेकिन कुछ चीजें तो मनुष्य को ज्ञात हैं।

जीवन में बड़ी और छोटी चीजों का कोई भेद और फासला नहीं है। न तो सूरज बड़ा है और न छोटा-सा दिया छोटा है। एक कंकड़ भी छोटा नहीं है, क्योंकि अस्तित्व की उतनी ही मिस्ट्री, उतना ही रहस्य एक छोटे से कंकड़ में है जितना कि बड़े हिमालय में होगा। एक पानी की बूंद उतनी ही रहस्यपूर्ण है, जितना हिन्द महासागर है। छोटे और बड़े का भेद आदमी की कल्पना में है। अस्तित्व में छोटे और बड़े का कोई फासला नहीं है।

मैंने सुना है, एक साँझ जब सूरज पश्चिम को डूबने लगा तो उसने चिल्लाकर कहा—'मैं तो जा रहा हूँ और रात अंधेरी उतरने को है, अब मेरी जगह अंधेरे से लड़ाई कौन करेगा, संघर्ष कौन करेगा ?'

चाँद चुप रहा, तारे चुप रहे, लेकिन एक मिट्टी के छोटे-से दिये ने कहा—'मैं रात भर लड़ता रहूँगा जब तक आप वापस न लौट आयें।'

और रातभर एक छोटा-सा दिया अंधेरे से लड़ता रहा। सूरज बड़ा होगा बहुत, लेकिन एक छोटे-से दिये के अंधेरे में संघर्ष को देखा है आपने ? एक छोटे-से दिये की ज्योति को तूफानों में काँपते देखा है आपने ? उस छोटी-सी ज्योति का अपना रहस्य है, जो किसी सूरज से कम नहीं। उस छोटी-सी ज्योति में वह सब छिपा है जो बड़े-से-बड़े सूरज में होगा या हो सकता है। कौन है छोटा और कौन है बड़ा ?

एक कवि ने कहा है कि अगर हम एक छोटे-से फूल को भी पूरी तरह जान लें तो हम पूरे विश्व को जान लेंगे, पूरे जगत् को, पूरे जीवन को। एक छोटा-सा फूल, एक घास का छोटा-सा फूल भी अगर आदमी पूरी तरह जान ले तो जानने को कुछ भी शेष नहीं रह जाता है। क्या एक बूंद को जान लेने से सागर नहीं जान लिया जाता ? क्या रेत के एक छोटे-से टुकड़े को जान लेने से सारे पहाड़ नहीं जान लिये जाते ? एक छोटे-से अणु का उद्घाटन और जीवन के सारे अस्तित्व का बोध नहीं हो जाता है ? लेकिन नहीं, कुछ भी हमें ज्ञात नहीं है और जिसे हम ज्ञान समझ रहे हैं, वह ज्ञान नहीं, कामचलाऊ, युटिलिटेरियन परिचय है। उस परिचय के कारण यह भ्रम पैदा हो जाता है कि हम जानते हैं।

मुझे प्रीतिकर है एक व्यक्ति का उल्लेख। एडीसन एक छोटे-से गाँव में

गया था। एडीसन ने अपने जीवन में एक हजार आविष्कार किये हैं। शायद किसी वैज्ञानिक ने इतने आविष्कार कभी नहीं किये हैं—एक हजार। विद्युत् के लिए, इलेक्ट्रिसिटी के लिए उससे बड़ा कोई तत्त्ववेत्ता नहीं था जो उतना जानता हो विद्युत् के सम्बन्ध में जितना एडीसन। वह एक छोटे-से गाँव में गया है। गाँव के लोगों को पता भी नहीं कि वह कौन है। गाँव के स्कूल में, एक छोटे-से एक्जीबिशन में, एक प्रदर्शनी चल रही है। स्कूल के बच्चों ने बहुत-से खेल-खिलौने बनाये। स्कूल के विज्ञान के विद्यार्थियों ने बिजली के भी खेल-खिलौने बनाये हैं। एक छोटी नाव बनायी है, रेलगाड़ी बनायी है, मोटरगाड़ी बनायी है और बच्चे बड़े आनन्द से, प्रदर्शनी को जो भी लोग देखने आये हैं उन्हें समझा रहे हैं एक-एक चीज को। एडीसन भी घूमता हुआ उस प्रदर्शनी में पहुँच गया। वह विज्ञान के हिस्से में चला गया। छोटे-छोटे बच्चे उसे समझा रहे हैं कि यह नाव विद्युत् से चलती है। वह खुशी से देख रहा है, अवाक् विस्मय से भरा हुआ। वे बच्चे और भी खुश होकर उसे समझा रहे हैं। तब अचानक उस बूढ़े ने उन बच्चों से पूछा—यह तो ठीक है कि तुम कहते हो कि यह विद्युत् से चलती है यह मशीन, यह नाव, यह गाड़ी, लेकिन मैं अगर तुमसे पूछूँ तो तुम बता सकोगे क्या ? एक छोटा-सा सवाल मेरे मन में आ गया है—ह्वाट इज इलेक्ट्रिसिटी ?—विद्युत् क्या है, बिजली क्या है ?'

वे बच्चे बोले, 'बिजली ! हम नाव तो चलाना जानते हैं, लेकिन बिजली क्या है, यह हमें पता नहीं। हम अपने शिक्षक को बुला लाते हैं।'

वे अपने शिक्षक को बुला लाये हैं और एडीसन ने उनसे भी पूछा—ह्वाट इज इलेक्ट्रिसिटी ?

शिक्षक भी हैरान हो गये। वे विज्ञान के स्नातक हैं, ग्रेज्युएट हैं। उन्होंने कहा, 'हमें पता है कि विद्युत् कैसे काम करती है, लेकिन यह हमें कुछ भी पता नहीं कि विद्युत् क्या है। लेकिन आप ठहरें, हमारा प्रिंसिपल डी० एस-सी० है, वह तो विज्ञान का बहुत बड़ा विद्वान् है। हम उसे बुला लाते हैं।'

वे अपने प्रिंसिपल को बुला लाये हैं और एडीसन का किसीको पता नहीं कि सामने जो आदमी खड़ा है वह विद्युत् का सबसे ज्यादा जाननेवाला आदमी है। वह प्रिंसिपल आ गया है, उसने समझाने की कोशिश की है, लेकिन एडीसन पूछता है—'मैं यह नहीं पूछता कि बिजली कैसे काम करती है, मैं यह नहीं पूछता कि बिजली किन-किन चीजों से मिलकर बनी है, मैं पूछता हूँ कि बिजली क्या है ?'

उस प्रिंसिपल ने कहा, 'क्षमा करें। इसका तो हमें कुछ पता नहीं।' वे सब

बड़े पशोपेश और चिन्ता में पड़ गये तो वह बूढ़ा हँसने लगा और उसने कहा—'शायद तुम्हें पता नहीं, मैं एडीसन हूँ और मैं भी नहीं जानता कि विजली क्या है।'

यह विनम्रता, यह ह्युमिलिटीज सत्य के साधक के लिए पहली शर्त है। एडीसन कह सकता है कि मैं भी नहीं जानता हूँ कि विद्युत् क्या है। यह धार्मिक चित्त का लक्षण है, 'रिलीजस माइंड' का लक्षण है कि जीवन के इस अनन्त रहस्य को स्वीकार करता है। जो व्यक्ति जीवन के रहस्य को स्वीकार करता है, वह व्यक्ति अपने ज्ञानी होने के रहस्य को स्वीकार नहीं कर सकता। क्योंकि ये दोनों बातें आपस में विरोधी हैं। जब कोई कहता है कि मैं ज्ञानी हूँ, जब वह यह कहता है कि जीवन में अब कोई रहस्य नहीं, मैंने जान लिया है। जिस बात को फिर हम जान लेते हैं उसमें कोई रहस्य, कोई मिस्ट्री नहीं रह जाती। जो व्यक्ति कहता है मैं नहीं जानता हूँ वह यह कह रहा है कि जीवन एक रहस्य है, जीवन एक अनन्त रहस्य है। व्यक्ति के अज्ञान पर मेरा इतना जोर क्यों है? जोर इसलिए है ताकि जीवन की रहस्यमयता, जीवन का मिस्टीरियस होना आपके स्मरण में आ सके। ज्ञानी के लिए कोई रहस्य नहीं है। जहाँ हमने जान लिया, वहाँ रहस्य समाप्त हो जाता है। हजारों वर्षों से धर्म-शास्त्रों ने मनुष्य के रहस्य की हत्या की है। वे हर चीज को ऐसा समझाते हुए मालूम पड़ते हैं जैसे जानते हैं। उनसे अगर पूछो कि दुनिया किसने बनायी तो उनके पास रेडीमेड उत्तर तैयार है। वे कहते हैं कि ईश्वर ने बनायी है और उनमें से कुछ यह भी कहते हैं कि छह दिन तक उसने दुनिया बनायी, फिर सातवें दिन विश्राम किया। उनमें से कुछ यह भी कहते हैं और तिथि तारीख भी बताते हैं कि आज से हजार वर्ष पहले फलां सन् में, फलां तिथि में ईसा से चार हजार वर्ष पहले पृथ्वी बनायी गयी है, जीवन बनाया गया। वे हर चीज का उत्तर देने के लिए हमेशा तैयार हैं। मनुष्य कैसे जान सकता है कि जीवन कब बनाया गया? मनुष्य तो जीवन के बीच में स्वयं आता है, वह जीवन के प्रारम्भ को कैसे जान सकता है? सागर की लहरें कैसे जान सकती हैं कि सागर कब बना होगा? सागर के होने पर ही लहरें उठती हैं। सागर जब नहीं था तब लहर भी नहीं हो सकती है—तो लहर कैसे जान सकती है, मनुष्य कैसे जान सकता है? कोई भी कैसे जान सकता है कि जीवन कब और कैसे पैदा हुआ? लेकिन नहीं, ज्ञानियों का दम्भ बहुत मजबूत है। वे हर चीज का उत्तर देने को हमेशा तैयार हैं। ऐसा कोई प्रश्न नहीं जिसके लिए वे इनकार करें। ऐसा कोई प्रश्न नहीं जिसके लिए वे कहें कि हम नहीं जानते हैं। आप कोई भी प्रश्न लेकर चले जायें, धर्मशास्त्रियों के पास हमेशा उत्तर तैयार है। इसलिए

मैं आपसे कहता हूँ कि एक वैज्ञानिक तो शायद कभी जीवन के सत्य तक पहुँच जाय, क्योंकि विज्ञान के मन में ह्यूमैलिटी है, एक विनम्रता है लेकिन धर्मों के पंडित कभी परमात्मा के पास नहीं पहुँच सकते हैं, क्योंकि उनके पास हर बात का उत्तर है, हर बात का ज्ञान है। वे सर्वज्ञ हैं, वे सभी कुछ जानते हैं। उनकी सर्वज्ञता जीवन के रहस्य को नष्ट कर रही है, इसका उन्हें कोई ख्याल नहीं। आदमी के जीवन से धर्म इसी तरह धीरे-धीरे क्षीण होता गया है। अगर मनुष्य को वापस धर्म की दिशा में ले जाना हो तो उसके रहस्य को फिर से जन्म देने की जरूरत है। इसलिए मैंने सुबह आपसे कहा—आदमी को अपने अज्ञान का बोध होना चाहिए। यह बोध अत्यन्त अनिवार्य है। इस बोध के बिना कोई गति नहीं हो सकती।

एक मित्र ने पूछा है कि ऐसी भी परिस्थिति होती है कि उसमें हम साधना नहीं कर सकते हैं।

मुझे पता नहीं कि उनकी परिस्थिति क्या है, लेकिन मैं ऐसी एक भी परिस्थिति नहीं जानता हूँ और कल्पना भी नहीं कर पाता हूँ जिसमें कि साधना न की जा सके। परिस्थिति की बात हमेशा आदमी का बहाना है और हम लोग बहाने ईजाद करने में बहुत कुशल हैं। जो हमें नहीं करना होता है, उसके लिए हम हमेशा बहाना ईजाद कर लेते हैं।

एक मन्दिर बन रहा था, आसपास के गाँवों के सारे लोग श्रमदान कर रहे थे उस मन्दिर में, आकर मन्दिर बनाने में। मन्दिर के बनानेवालों ने प्रार्थना की थी गाँव-गाँव के लोगों से कि सभी आकर थोड़ा-थोड़ा मन्दिर बनायें। कोई एक ईंट ले आये, कोई एक ईंट जोड़ दे, कोई एक पत्थर ले आये, कोई एक पत्थर रख दे, कोई मिट्टी ढो दे, लेकिन वह सब लोगों के श्रम से बने मन्दिर। बड़े समझदार लोग रहे उस गाँव के। क्योंकि जब एक आदमी मन्दिर बनाता है तो वह मन्दिर अहंकार का मन्दिर हो जाता है और जब हजारों लोग प्रेम से मिलकर कुछ बनाते हैं तो वह प्रेम ही उस स्थान को मन्दिर बना देता है। दूर-दूर से लोग उस मन्दिर को बनाने आये हुए थे। वह किसी एक आदमी के आस-पास पत्थर से बननेवाला मन्दिर नहीं था। काम शुरू हो गया था, लेकिन एक आदमी सुबह से ही आकर खड़ा हो गया है चुपचाप उदास। वह कोई काम नहीं कर रहा है। वह एक पेड़ के नीचे चुपचाप खड़ा है। मन्दिर बनानेवाले दो-चार लोग उसके पास गये और बोले, 'मित्र, तुम कुछ हाथ नहीं बटाओगे? तुम कुछ सहयोग नहीं दोगे?'

उस आदमी ने कहा, 'मैं भी चाहता हूँ कि प्रभु के मन्दिर में श्रम करूँ,

मैं भी चाहता हूँ कि यह आनन्द मुझे भी मिले, लेकिन भूखा पेट आदमी हो तो क्या कर सकता है ? मैं भूखा पेट हूँ, भूखे पेट कैसे श्रम किया जा सकता है ?'

बात तो ठीक थी। वे लोग उसे अपने घर ले गये। उसे भर पेट भोजन कराया, फिर वे सब मन्दिर की तरफ वापस लौटे। और लोग तो मन्दिर के काम करने लग गये। वह आदमी फिर अपने वृक्ष के नीचे जाकर वैसा ही खड़ा हो गया जैसे सुबह खड़ा था। थोड़ी देर बाद उन्होंने देखा कि वह फिर उदास वहीं खड़ा रहा है, उसने न एक पत्थर उठाया है, न एक ईंट उठायी है। वे फिर उसके पास गये और कहा, 'मित्र, फिर कोई तकलीफ आ गयी क्या, आप फिर कोई सहायता नहीं कर रहे हैं ?'

उसने कहा, 'मैं भी चाहता हूँ कि प्रभु के मन्दिर में श्रम करूँ, लेकिन भरे पेट कोई श्रम कर सकता है क्या ?' सुबह वह खाली पेट था इसलिए काम नहीं कर सकता था, अब वह भरे पेट है इसलिए श्रम नहीं कर सकता। अब यह आदमी कब श्रम करेगा ?

कोई इसलिए साधना नहीं कर पाता कि गरीब है, कोई इसलिए साधना नहीं कर पाता कि अमीर है। कोई इसलिए साधना की तरफ नहीं जाता है कि पेट खाली है, कोई कहता है कि पेट भरा है इसलिए हम साधना में नहीं जा पाते। मुझे हर परिस्थिति के लोग मिलते हैं और मैंने देखा, वे सब लोग कहते हैं कि हमारी परिस्थिति ऐसी है कि हम कुछ करने में समर्थ नहीं है। अब तक मुझे एक भी आदमी नहीं मिला है जिसने यह कहा हो कि मेरी परिस्थिति ऐसी है कि मैं करने में समर्थ हूँ। जरूर कोई और कारण है, परिस्थितियाँ असली कारण नहीं हैं। असली कारण जो हम नहीं करना चाहते हैं उसके लिए हमेशा 'जस्टीफिकेशन', उसके लिए हमेशा न्यायोचित कारण खोज लेते हैं और निश्चिन्त हो जाते हैं। ऐसी कौन-सी परिस्थिति है जिसमें आदमी प्रेमपूर्ण न हो सके ? ऐसी कौन-सी परिस्थिति है जिसमें आदमी थोड़ी देर के लिए मौन और शांति में प्रविष्ट न हो सके ? हर स्थिति में, हर परिस्थिति में वह होना चाहे तो बिलकुल हो सकता है।

यूनान के एक वजीर को उसके सम्राट् ने फाँसी की सजा दे दी थी। सुबह तक सब ठीक था। दोपहर वजीर के घर सिपाही आये और उन्होंने घर को चारों तरफ से घेर लिया और वजीर को भीतर जाकर खबर दी, कि आप कैद कर लिये गये हैं और सम्राट् की आज्ञा है कि आज संध्या आपको फाँसी दे दी जायेगी, छह बजे।

वजीर के घर उसके मित्र आये हुए थे। एक बड़े भोज का आयोजन था

वजीर का जन्म-दिन था वह। एक बड़े संगीतज्ञ को बुलाया गया था। वह अभी-अभी अपनी वीणा लेकर हाजिर हुआ था। अब उसका संगीत शुरू होने को था। संगीतज्ञ के हाथ ढीले पड़ गये। वीणा उसने एक ओर टिका दी। मित्र उदास हो गये। पत्नी रोने लगी। लेकिन उस वजीर ने कहा, 'छह बजने में अभी बहुत देर है, तब तक गीत पूरा हो जायेगा। राजा की बड़ी कृपा है कि छह बजे तक कम-से-कम उसने फाँसी नहीं दी। लेकिन वीणा बन्द क्यों हो गयी, मित्र उदास क्यों हो गये? छह बजने में अभी बहुत देर है। छह बजे तक कुछ भी बन्द करने की कोई जरूरत नहीं।'

लेकिन मित्र कहने लगे, 'अब हम भोजन कैसे करें?'

संगीतज्ञ कहने लगा, 'मैं वीणा कैसे बजाऊँ? परिस्थिति बिलकुल अनुकूल नहीं रही।' वह आदमी हँसने लगा, जिसको फाँसी होने को थी। उसने कहा, 'इससे अनुकूल परिस्थिति और क्या होगी। छह बजे मैं मर जाऊँगा। क्या यह उचित न होगा कि उसके पहले मैं संगीत सुनूँ? क्या यह उचित न होगा कि उसके पहले मैं अपने मित्रों से हँस लूँ, बोल लूँ, मिल लूँ। क्या यह उचित न होगा कि मेरा घर एक उत्सव का स्थान बन जाये; क्योंकि साँझ छह बजे मुझे हमेशा के लिए विदा हो जाना है।'

घर के लोग कहने लगे कि परिस्थिति अनुकूल न रही कि अब कोई वीणा बजाये, नहीं अब कोई भोज होगा।

लेकिन वह आदमी कहने लगा कि इससे अनुकूल परिस्थिति और क्या होगी? जब छह बजे मुझे हमेशा के लिए विदा हो जाना है तो क्या यह उचित न होगा कि विदा होते क्षणों में मैं संगीत सुनूँ? क्या यह उचित न होगा कि मित्र उत्सव करें? क्या यह उचित न होगा कि उसका घर एक उत्सव बन जाये कि जाते क्षण उसकी स्मृति में हमेशा वे थोड़े से पल टिके हुए रह जायें जो उसने अंतिम क्षण विदाई के क्षण अनुभव किये थे।

और उस घर में वीणा बजती रही और उस घर में भोज चलता रहा, यद्यपि लोग उदास थे, संगीतज्ञ उदास था, परेशान था। राजा को खबर मिली। राजा देखने आया कि वह वजीर पागल तो नहीं है और जब वह पहुँचा तो घर वीणा बजती थी और मेहमान इकट्ठे थे और राजा जब भीतर गया तो वजीर खुद भी आनन्दमग्न बैठा था। राजा ने पूछा, 'तुम पागल हो गये हो? खबर नहीं मिली कि छह बजे साँझ मौत तुम्हारी आ रही है।'

उसने कहा, 'खबर मिल गयी, इसलिए आनन्द के उत्सव को हमने तीव्र कर दिया, उसे शिथिल करने का तो सवाल नहीं था, क्योंकि छह बजे मैं विग

हो जाऊँगा तो छह बजे तक हमने आनन्द के उत्सव को तीव्र कर दिया है; क्योंकि अंतिम विदा के क्षण स्मरण में रह जायें।'

राजा ने कहा, 'ऐसे आदमी को फाँसी देना व्यर्थ है। जो आदमी जीना जानता है, उसे मरने की सजा नही दी जा सकती है। मैं यह सजा वापस लेता हूँ। ऐसे प्यारे आदमी को अपने हाथों से मारूँ, यह ठीक नहीं।'

जीवन में क्या अवसर है, क्या परिस्थिति है, यह इस बात पर निर्भर नही होता है कि परिस्थिति क्या है। यह इस बात पर निर्भर होता है कि हम उस परिस्थिति को किस भाँति लेते हैं, किस 'एटीट्यूड' में, किस दृष्टि से। मुझे ज्ञात नही होता कि कोई भी ऐसी परिस्थिति हो सकती है जो आपके जीवन में प्रभु की तरफ जाने से आपको रोकती हो। आप ही अपने को रोकना चाहते है तो बात दूसरी है। तब हर परिस्थिति रोक सकती है। और आप ही अपने को नही रोकना चाहेंगे तो कोई ऐसी परिस्थिति न कभी थी और न कभी हो सकती है। थोड़ा ध्यान से अपनी दृष्टि को देखने की कोशिश आप करें। परिस्थिति को दोष न दें। थोड़ा ध्यान करना इस बात पर, कि मेरा दृष्टिकोण परिस्थिति को समझने की, मेरी वृत्ति, मेरी अप्रोच, मेरी पहुँच तो कही गलत नही है। कहीं मै गलत ढंग से तो चीजों को नही ले रहा हूँ।

एक घटना मुझे और स्मरण आती है। कोरिया में भिक्षुणी स्त्री, एक संन्यासिनी एक रात एक गाँव में भटकी हुई पहुँची। रास्ता भटक गयी है और जिस गाँव पहुँचना था वहाँ न पहुँचकर दूसरे गाँव पहुँच गयी है। उसने जाकर एक द्वार पर दरवाजा खटखटाया। आधी रात है। दरवाजा खुला, लेकिन उस गांव के लोग दूसरे धर्म को मानते थे, वह भिक्षुणी दूसरे धर्म की थी। उस दरवाजे के मालिक ने दरवाजा बन्द कर लिया और उसने कहा— 'देवी, यह द्वार तुम्हारे लिए नहीं है। हम इस धर्म को नही मानते है। तुम कहीं खोज कर लो' और उसने चलते वक्त यह भी कहा कि 'इस गाँव में शायद ही कोई दरवाजा तुम्हारे लिए खुले, क्योंकि इस गाँव के लोग दूसरे ही धर्म को मानते है और हम तुम्हारे धर्म के शत्रु है।' आप तो जानते हैं धर्म धर्म आपस में बड़े शत्रु है। एक गाव का अलग धर्म है, दूसरे गाँव का अलग धर्म है। एक धर्मवाले को दूसरे धर्मवाले के यहाँ कोई शरण नही, कोई आशा नही, कोई प्रेम नहीं।

द्वार बन्द हो जाते है। द्वार बन्द हो गये उस गाँव के। उसने दो-चार दरवाजे खटखटाये, लेकिन दरवाजे बन्द हो गये। सर्द रात है, वह अकेली स्त्री है, वह कहाँ जायेगी ? लेकिन धार्मिक लोगों ने मनुष्यता जैसी बात कभी सोची

ही नहीं। वे हमेशा सोचते हैं हिन्दू है या मुसलमान; बौद्ध है या जैन। आदमी का कोई सीधा मूल्य उनकी दृष्टि में कभी नहीं रहा है।

उस स्त्री को वह गाँव छोड़ देना पड़ा। आधी रात वह जाकर गाँव के बाहर एक वृक्ष के नीचे सो गयी। कोई दो घंटे बाद ठण्ड के कारण उसकी नींद खुली। उसने आँख खोली। ऊपर आकाश तारों से भरा है। उस वृक्ष पर फूल खिल गये हैं। रात में खिलने वाले फूलों की सुगन्ध चारों तरफ फैल गयी है। वृक्ष के फूल चटक रहे हैं। आवाज आ रही है और फूल खिलते चले जा रहे हैं। वह आधी घड़ी तक मौन उस फूल को, उस वृक्ष के फूलों को खिलते देखती रही। आकाश के तारों को देखती रही। फिर दौड़ी गाँव की तरफ और जाकर उसने उन दरवाजों को खटखटाया जिन दरवाजों को उनके मालिकों ने बन्द कर लिया था। आधी रात फिर कौन आ गया। उन्होंने दरवाजे खोले, वही भिक्षुणी खड़ी है। उन्होंने कहा—'हमने मना कर दिया, यह द्वार तुम्हारे लिए नहीं है, फिर दोबारा क्यों आ गयी हो?'

लेकिन उस भिक्षुणी की आँखों में कृतज्ञता के आँसू बह जाते हैं। उसने कहा—'नहीं, अब द्वार खुलवाने नहीं आयी, अब ठहरने नहीं आयी, केवल धन्यवाद देने आयी हूँ। काश, तुम आज मुझे अपने घर में ठहरा लेते तो रात मैं आकाश के तारे और फूलों का चिटक कर खुल जाना मैं देखने से वंचित ही रह जाती। मैं सिर्फ धन्यवाद देने आयी हूँ कि तुम्हारी बड़ी कृपा थी कि तुमने द्वार बन्द कर लिये और मैं खुले आकाश के नीचे सो सकी। तुम्हारी बड़ी कृपा थी कि तुमने घर की दीवालों से मुझे बचा लिया और खुले आकाश में मुझे भेज दिया। जब तुमने भेजा था तब तो मेरे मन को लगा था, कैसे बुरे लोग हैं। अब मैं यह कहने आयी हूँ कि कैसे भले लोग हैं इस गाँव के। मैं धन्यवाद देने आयी हूँ, परमात्मा तुम पर कृपा करे। जैसी तुमने मुझे एक अनुभव की रात दे दी, जो आनन्द मैंने आज जाना है, जो फूल मैंने आज खिलते देखे हैं, जैसे मेरे भीतर भी कोई प्राणों की कली चिटक गयी हो और खुल गयी हो। जैसी आज अकेली रात में मैंने आकाश के तारे देखे हैं, जैसे मेरे भीतर ही कोई आकाश स्पष्ट हो गया हो और तारे खिल गये हों। मैं उसके लिए धन्यवाद देने आयी हूँ। भले लोग हैं तुम्हारे गाँव के।'

परिस्थिति कैसी है, इस पर कुछ निर्भर नहीं करता। हम परिस्थिति को कैसे लेते हैं इस पर सब कुछ निर्भर करता है। हरएक व्यक्ति को परिस्थिति कैसी लेनी है, यह सीख लेना चाहिए। तब तो राह पर पड़े हुए पत्थर भी सीढ़ियाँ बन जाते हैं और जब हम परिस्थितियों को गलत ढंग से लेने के

आदी हो जाते हैं तो सीढ़ियाँ भी पत्थर मालूम पड़ने लगती हैं, जिनसे रास्त रुकता है। पत्थर सीढ़ियाँ बन सकते हैं, सीढ़ियाँ पत्थर मालूम हो सकते हैं। अवसर दुर्भाग्य मालूम हो सकते हैं, दुर्भाग्य अवसर बन सकते हैं हम कैसे लेते हैं, हमारे देखने की दृष्टि क्या है, हमारी पकड़ क्या है, जीवन क कोण हमारा क्या है, हम कैसे जीवन को लेते और देखते हैं, इस पर निर्भर है।

आशा से भरकर जीवन को देखें। साधक अगर निराशा से जीवन को देखेगा तो गति नहीं कर सकता है। आशा से भरकर जीवन को देखें। अधैर्य से भरकर जीवन को देखेंगे अपने को तो साधक एकदम आगे नहीं बढ़ सकता। धैर्य से, अनन्त धैर्य से जीवन को देखें। उतावलेपन में जीवन को देखेंगे शीघ्रता में भागते हुए, तो साधक एक इंच भी आगे नहीं बढ़ सकता है। प्रतीक्षा से जीवन को देखें, अनन्त प्रतीक्षा से, जो आज नहीं हुआ वह कल हो सकेगा, जो कल भी नहीं हो सकेगा वह परसों हो सकेगा। हो सकेगा। प्रतीक्षा और आशा मनुष्य के जीवन में अज्ञात के रास्ते पर जहाँ कोई माइल स्टोन नहीं लगे हुए हैं, जिनसे पता चल सके कि हम कितना चले गये, जहाँ कोई भीड़ साथ नहीं चलती जिससे आश्वासन मिल सके कि हम कितना बढ़ गये, एकांत के रास्ते पर। अकेले के रास्ते पर मनुष्य प्रभु की तरफ जाता है। वहाँ उसे अनन्त प्रतीक्षा उसके साथ न हो, धैर्य साथ न हो, आशा साथ न हो, जीवन को देखने का आनन्दपूर्ण दृष्टिकोण साथ न हो, प्रार्थनापूर्ण मन साथ न हो तो फिर आगे बढ़ना बहुत कठिन हो जाता है। इस सम्बन्ध में दो-तीन बातें समझ लेनी चाहिए और फिर कुछ प्रश्न बच रहेंगे तो कल हम उन पर बात करेंगे।

दो-तीन बातें समझने के बाद हम रात्रि के ध्यान के लिए बैठेंगे।

मैंने कहा, साधक के लिए आशापूर्ण दृष्टि चाहिए। सामान्यतः हमारी दृष्टि बड़ी निराशापूर्ण है। हम चीजों को हमेशा अंधेरे हिस्से की तरफ से देखते हैं। हमेशा हम वहाँ से देखते हैं जहाँ चीजें दुखद, कष्टपूर्ण, प्रतिकूल प्रतीत होने लगती हैं।

एक आदमी एक अजनबी गाँव में गया हुआ था। उसने जाकर पूछा कि मैं फलाँ युवक को खोजने आया हूँ। मैंने सुना है, वह बहुत अच्छा बाँसुरी बजाता है। जिस आदमी से उसने कहा था, उसने कहा, छोड़ो यह ख्याल, वह आदमी क्या बाँसुरी बजायेगा? वह आदमी चोर है, बेईमान है, झूठा है। क्या बाँसुरी बजायेगा, उस जैसा चोर आदमी हमारी बस्ती में नहीं है।

तो उसने कहा कि फिर मैं क्या पूछूँ ? मुझे उसकी खोज करनी है। क्या मैं यह पूछूँ कि तुम्हारी बस्ती में जो सबसे ज्यादा चोर है वह कहाँ रहता है ?

जवाब मिला कि इसी तरह पूछोगे तो पता भी चल सकता है।

उसने दूसरे आदमी से जाकर पूछा कि इस गाँव में फलाँ आदमी को खोजने आया हूँ जो बहुत बड़ा चोर है, बेईमान है, झूठ बोलनेवाला है। उस आदमी ने कहा—मैं विश्वास भी नहीं कर सकता कि वह झूठ बोलता होगा, चोरी करता होगा। वह इतनी अच्छी बाँसुरी बजाता है।

एक आदमी है जो बाँसुरी बजाता है। कोई देखता है कि बाँसुरी इतनी अच्छी बजाता है कि वह कैसे चोरी कर सकता होगा। कोई दूसरा देखता है कि चोर है, ऐसा बुरा चोर है तो कैसे बाँसुरी बजाता होगा। हम कैसे देखते हैं, हम कहाँ से देखते हैं ? हम जीवन में, मनुष्य में, परिस्थितियों में, घटनाओं में क्या खोजते हैं ? हम कोई प्रकाश, उज्ज्वल पक्ष खोजते हैं या कोई अंधकारपूर्ण बात ? हम क्या खोजते हैं ? हम कोई प्रकाश की किरण खोजते हैं या अंधकार की कोई धारा ? हम जब फूलों के पास जाते हैं तो काँटों की गिनती करते हैं या फूलों की ? हम जब किसी मनुष्य के पास बैठते हैं तो हम उसके भीतर क्या देखते हैं, कोई प्रशंसा का द्वार या निन्दा की कोई गन्दी गली ? हम क्या खोजते हैं ? हमारी दृष्टि क्या है और जो दृष्टि हमारी होगी धीरे-धीरे हमारे भीतर उसी तरह का भाव घनीभूत होता चला जायेगा। साधक के लिए स्पष्ट रूप से आशावादी दृष्टि चाहिए। बहुत प्रकाशपूर्ण पक्ष को देखने की सामर्थ्य चाहिए। प्रत्येक स्थिति में वह खोज सके कि शुभ क्या है और घने से घने काँटों के जंगल में वह एक फूल भी खोज सके कि यह फूल है तो उसका रास्ता निरन्तर काँटों से मुक्त होता चला जाता है। रोज-रोज उसे फूलों की ओर गहरे से गहरे मार्ग मिलते जाते हैं। हम जो खोजते हैं वही हमें मिल जाये तो आश्चर्य नहीं है। वही हमें मिल जाता है। हम जो खोजने निकल पड़े हैं, वही हमें मिल जाता है। तो थोड़ी अपनी परिस्थितियों पर विचार करना है। क्या उन परिस्थितियों में कोई भी सम्भावना नहीं है शुभ की ? क्या उन परिस्थितियों में कोई भी अनुकूलता नहीं ? क्या उन परिस्थितियों में मैत्री की सम्भावना नहीं ? क्या उन परिस्थितियों में कुछ भी नहीं है जहाँ उस द्वार को खोला जा सके ? खोजेंगे तो पायेंगे, बहुत कुछ है, बहुत कुछ है। नहीं खोजेंगे या गलत चीज खोजेंगे तो पायेंगे, कुछ भी नहीं है।

एक आदमी के पैर में चोट लग गयी है। वह बहुत बेचैन, दुखी है और परमात्मा की निन्दा करता है। एक मकान की बड़ी मंजिल में न्यूयार्क की एक

लिफ्ट में सवारी कर रहा है, ऊपर जा रहा है। जैसे ही लिफ्ट ऊपर उठने लगी है उसने देखा कि लिफ्ट पर एक आदमी भी सवार है। उसके दोनों पैर कटे हुए हैं, वह कुर्सी पर बैठा हुआ है, हँस रहा है और गीत गुनगुना रहा है। उसके पैर में जरा सी चोट थी, वह परमात्मा के प्रति क्रोध से भरा हुआ था। उसने उस आदमी से पूछा, 'मेरे दोस्त, तुम्हारे पास क्या है ? तुम्हारे दोनों पैर कटे हुए हैं और तुम गीत गुनगुना रहे हो और हँस रहे हो।'

उस आदमी ने कहा, 'मेरी दोनों आँखें शेष हैं, मेरे दोनों हाथ अभी शेष हैं। मैंने ऐसा आदमी भी देखा है जिसके दोनों हाथ भी कट गये हैं। मैंने ऐसा आदमी भी देखा है जिसकी दोनों आँखें भी नहीं थीं। दोनों पैर ही गये त क्या हुआ ? अभी मेरे दोनों हाथ शेष हैं, दोनों आँखें शेष हैं, अभी और स कुछ तो शेष हैं। मैं, दो पैर जो चले गये हैं उनके लिए भगवान् के प्रति क्रो प्रकट करूँ या जो मेरे पास शेष है उसके लिए धन्यवाद दूँ ? मैं क्या करूँ ?'

जो हमारे पास है उसके लिए धन्यवाद दें या जो हमारे पास नहीं है उस लिए शिकायत करें ? मर्जी है आदमी की, जो चाहे करे। चाहे शिकायत क चाहे प्रशंसा करे, कोई कुछ कहने नहीं आयेगा, लेकिन दोनों हालतों में जमी और आसमान का फर्क पड़ जायगा और उस फर्क से खुद को पीड़ा झेल पड़ेगी। शिकायत करनेवाला मन धीरे-धीरे उदास हो जाता है और निर हो जाता है। धन्यवाद देनेवाला मन धीरे-धीरे आनन्द से भर जाता है, प्रफुल्ल से, आशा से। जो आशा से भर जाता है, वह आगे कदम उठा सकता है। निराशा से भर जाता है उसके उठे हुए कदम भी पीछे लौटने लगते हैं। मैं आपसे कहूँगा, अपनी परिस्थितियों को खोजें कि क्या वहाँ आशापूर्ण क भी सम्भावना नहीं ?

दूसरी बात, क्या चौबीस घण्टों में थोड़े से क्षणों के लिए अपनी परिस्थि से मुक्त नहीं हुआ जा सकता ? नींद रोज मुक्त कर देती है, आपकी स परिस्थितियाँ बाहर पड़ी रह जाती हैं। न आप गरीब रह जाते हैं, न अ रह जाते हैं। न आप दुखी रह जाते हैं, न आप सुखी रह जाते हैं। नींद आ कहीं ले जाती है जहाँ आप परिस्थितियों के बाहर हो जाते हैं। क्या थ देर के लिए जानते-बूझते परिस्थितियों के बाहर नहीं हुआ जा सकता ? स्मरण रहे, जो आदमी अपनी परिस्थितियों के बाहर थोड़े से क्षणों में सचेत रूप से हो जाता है, उसे यह पता चल जाता है कि वह तो हमेशा स्थितियों के बाहर है। एक क्षण को भी परिस्थितियों का अतिक्रमण कर पर यह पता चलता है कि मनुष्य की चेतना हमेशा परिस्थितियों के बाहर

साँझ आती है, सुवह आती है, सूरज निकलता है, रात आ जाती है। आदमी के आसपास से सव गुजर जाता है और आदमी हमेशा अलग खड़ा रह जाता है। जिस दिन इस पृथक्ता का बोध होगा, जिस दिन जीवन के बीच इस साक्षी भाव का उदय होगा कि मैं तो दूर खड़ा रह जाता हूँ, धाराएँ आती हैं और वह जाती हैं, हवाएँ आती हैं और गुजर जाती हैं। धूप आती है, शीत आती है, वर्षा आती है, गरमी आती है और मैं दूर खड़ा रह जाता हूँ, मैं पृथक् खड़ा रह जाता हूँ, कुछ भी मुझे छूता नहीं, कुछ भी मेरे प्राणों को अतिक्रान्त नहीं करता, कुछ भी मेरे भीतर जाकर वदलाहट नहीं करता। मैं तो वहीं रह जाता हूँ। चीज़ें आती हैं और वदल जाती हैं। जिस दिन यह एक क्षण को भी ख्याल होगा उसी दिन जीवन भर के लिए स्थिति वन जाती है! तो थोड़ी देर परिस्थितियों के वाहर होने की क्षमता जुटानी चाहिए कि परिस्थितियों के लिए रोते रहने से कोई भी फल नहीं। ध्यान का अर्थ इतना ही है कि हम परिस्थिति के वाहर जा रहे हैं थोड़ी देर को। ध्यान का यही अर्थ है—परिस्थितियों के वाहर उठ जाना, दूर हट जाना, ऊपर उठ जाना, परिस्थितियों के पार खड़े हो जाना, जैसे कोई हवाई जहाज ऊपर ऊपर उड़ रहा हो। वृक्ष नीचे छूट जाते हैं, पहाड़ नीचे छूट जाते हैं, ठीक वैसे ही जैसे कोई ध्यान के शून्य में प्रवेश करता है। वैसे ही परिस्थितियाँ, घर-द्वार, पत्नी-वच्चे सव पीछे छूट जाते हैं। चेतना एक नयी दिशा में उड़ान लेना शुरू कर देती है और जव पता चलता है कि जिन परिस्थितियों से हम घिरे थे उनमें घिरे तो जरूर थे, लेकिन घिरे होते हुए भी हमेशा वाहर थे। जैसे सूरज वदलियों में घिर जाये, ठीक वैसे मनुष्य की चेतना परिस्थितियों में घिरी है, लेकिन हमेशा वाहर है। यह वाहर होने का अनुभव ध्यान से उपलब्ध होता है। परिस्थितियों को दोष न दें, रास्ता निकालें, रास्ता जरूर मिल जाता है। ऐसी कोई भी जगह नहीं है जहाँ से प्रभु तक रास्ता न जाता हो। हो सकता है थोड़ा पथरीला रास्ता हो, थोड़ा ऊवड़-खावड़ हो। हो सकता है थोड़ा टकराना पड़े, तोड़ना पड़े, जीतना पड़े, लड़ना पड़े, लेकिन ऐसी कोई भी जगह नहीं, जहाँ से उस तक रास्ता नहीं जाता हो और मैं अंत में यह भी कह देना चाहता हूँ कि वे लोग जो थोड़ा कठिन रास्ते से गुजर कर आते हैं उनकी उपलब्धियों का मजा कुछ और है, उनके पा लेने का आनन्द ही और है, उनके जीत लेने की, उनके विजय की कथा और गौरव कथा ही और है, इसलिए घवरायें न। हो सकता है कठिन रास्तों से गुजर कर आप और भी मधुमय स्रोतों तक पहुँच जायें।

जो चलता ही चला जाता है, आशा और प्रतीक्षा से भरा हुआ है, वह अवश्य पहुँच जाता है।

अब रात्रि के ध्यान के सम्बन्ध में थोड़ी-सी बात समझ लें। फिर हम रात्रि के ध्यान के लिए बैठेंगे। रात्रि के ध्यान के सम्बन्ध में दो बातें समझ लें। सुबह का ध्यान जागने के बाद करने के लिए है। रात्रि का ध्यान सोने के पहले करने के लिए है। रात बहुत अद्भुत अवसर और मौका है। अगर ठीक से ध्यान में प्रवेश होकर सो जायें तो पूरी रात धीरे-धीरे कुछ समय में ध्यान में परिवर्तित हो जाती है। अगर सोते क्षणों में प्रविष्ट हो जाये चेतना तो फिर धीरे-धीरे पूरी रात, पूरी निद्रा ध्यान का हिस्सा बन जाती है। यह शायद आपको ख्याल न हो। नींद का वह क्षण, जब आप सोते हैं, जब आप नींद के दरवाजे में प्रविष्ट होते हैं, संक्रमण का क्षण है। वह जो बीच का द्वार है जहाँ से जागना समाप्त होता है और नींद शुरू होती है, उस क्षण में आपके मन की जो दशा होती है, रात भर चेतना उसी दशा के आस-पास घूमती रहती है। अगर आप चिंता में सो गये हैं तो रात चिंता में व्यतीत हो जाती है। अगर आप क्रोध में सो गये हैं तो रात के सपने क्रोध के आस-पास घूमते रहते हैं। विद्यार्थी जानते हैं कि पढ़ते-पढ़ते रात जब वे सो जाते है तो रात भर परीक्षा के आस-पास घूमते रहते हैं। चित्त जहाँ होता है नींद के पहले क्षण में, रात भर उसके आस-पास केन्द्र बन जाता है, चित्त वहीं घूमता है और सुबह भी जब आप उठते हैं तो आपने शायद कभी ख्याल न किया हो, करेंगे तो पता चल जायेगा कि सुबह जो पहला क्षण होता है नींद के टूटने का तो चित्त सबसे पहले उसी भाव को उपलब्ध हो जाता है जो सोते समय अन्तिम भाव था, अन्तिम विचार था। उसी जगह आप फिर सुबह खड़े हो जाते हैं जहाँ रात आप सोये थे। इसलिए रात्रि ध्यान में सो जाने का बहुत मूल्य है। यदि यह सम्भव हो जाये कि आप रोज रात्रि के ध्यान में प्रवेश होकर सो जायें तो आपके जीवन में एक आमूल क्रान्ति होनी शुरू हो जायेगी। सुबह आप बिलकुल एक नये आदमी की तरह उठेंगे और उठते ही ध्यान पहली बात होगी जो आपके स्मरण में आयेगी और रात के छह घंटे अगर शान्त निद्रा में बीत जायें, आपके चौबीस घंटे शांत हो जायेंगे, ताजा हो जायेंगे, नये हो जायेंगे।

जो लोग ध्यान के साथ निद्रा में गये हैं, जो लोग जाते हैं, वह मुझे कहते है कि ऐसी नींद हमने जीवन में कभी भी नहीं जानी। ध्यान के साथ नींद संयुक्त हो जाये तो एक अभूतपूर्व घटना घट जाती है। यह रात्रि का ध्यान

है, नींद के पहले करने का है। अन्तिम बिस्तर पर जब सो जायें, सब काम से निपट जायें, जब कुछ करने को शेष न रहे तब १५ मिनट के लिए इस ध्यान को करें और ध्यान करने के बाद चुपचाप सो जायें, फिर उठें नहीं। फिर कुछ भी न करें। ध्यान के बाद चुपचाप सो जायें, ताकि ध्यान में जो धारा शुरू हो वह नींद में प्रविष्ट हो जाये, उसकी अण्डर करेंट पूरी नींद में प्रविष्ट हो जाये। यह प्रयोग लेटकर ही करने का है। बिस्तर पर लेट जायें और सोकर ही। प्रयोग करने में दो-तीन बातें ख्याल में लेनी जरूरी है।

एक बात, सारे शरीर को शिथिल छोड़ देना जरूरी है, रिलेक्स छोड़ देना जरूरी है। शरीर पर कोई तनाव न हो, बिलकुल ढीला छोड दें, जैसे शरीर में कोई प्राण ही न रहे। एक एक अंग ढीला छोड़ दें और आराम से लेट जायें, फिर आहिस्ता से आँख बन्द कर लें, फिर शरीर की शिथिलता के लिए थोड़े से सुझाव, थोड़े 'सजेशंस' शरीर को दें, सिर्फ यह भाव थोड़ी देर करते रहें, एक-दो मिनट कि शरीर शिथिल हो रहा है, शरीर शिथिल हो रहा है। दो-तीन मिनट करने से दस-पाँच दिन में आप पायेंगे, शरीर बिलकुल शिथिल हो जायेगा और जब शरीर शिथिल होता है तो 'बाडीलेसनेस' पैदा हो जाती है। जब शरीर बिलकुल शिथिल हो जाता है तो अशरीरी भाव का अनुभव होता है, पता चलता है शरीर है ही नहीं। शरीर का पता तनाव के कारण चलता है, स्ट्रेन के कारण चलता है। शिथिल शरीर का कोई पता नहीं चलता है। आपको पता होगा, पैर में काँटा गड़ जाय तो पैर का पता चलता है, सिर में दर्द हो तो सिर का पता चलता है। अगर पैर में काँटा नहीं तो पैर का कोई पता नहीं चलता कि पैर है भी या नहीं। सिर में दर्द न हो तो सिर का भी कोई पता नहीं चलता है कि सिर है या नहीं। जहाँ शरीर में तनाव होता है वहीं शरीर का बोध होता है। स्वस्थ आदमी का एक ही लक्षण है कि उसे शरीर का कहीं भी पता न चले। बीमारी का पता चलता है, स्वास्थ्य का कोई पता नहीं चलता है।

ध्यान में पहले शरीर को इतना शिथिल छोड़ देना कि उसका पता ही नहीं चले और पन्द्रह दिन के प्रयोग में, और जो लोग ठीक ईमानदारी से सिंसेरिटी से प्रयोग करें, आज ही हो सकता है कि आज ही हम यहाँ प्रयोग करें तो आपको पता चले जैसे शरीर समाप्त हो गया है, शरीर है ही नहीं। दो तीन मिनट तक यह सुझाव देना है, शरीर शिथिल हो रहा है। फिर श्वास को ढीला छोड़ दें, रोकना नहीं है, शिथिल छोड़ देना है, जितनी जाय जाय, आये आये और दो-तीन मिनट तक यह भाव भी करना है कि श्वास भी

शान्त हो रही है, शान्त हो रही है, शान्त हो रही है। भाव करते-करते ह श्वास शान्त हो जायेगी, बहुत अल्प आती-जाती मालूम पड़ेगी। थोड़े दि प्रयोग करने पर पता भी नहीं चलता है कि श्वास आ रही है कि नहीं आ रह है, इतनी शान्त हो जाती है। शरीर शिथिल होता है तो श्वास अपने आप शान्त होती है, श्वास शांत होती है तो विचार क्षीण हो जाते हैं। फिर तीसरा सुझाव मन पर देना है कि विचार भी शान्त हो रहे हैं।

ये तीन सुझाव देने हैं। और सुबह जो हमने ध्यान किया था, चौथी बात वही हो कि चुपचाप पड़े रह जाना है, सुनते रहना है—हवाओं में, दरख्तों में, समुन्दर में। कोई आवाज आती हो, रास्ते पर लोग निकलते होंगे, वाहन निकलते होंगे। टैक्सी चलती होगी, ठेले चलते होंगे, सब चुपचाप सुनते रहना है।

तीन बातें—शरीर, श्वास और विचार—इनको शान्त छोड़ देना है और फिर चुपचाप जो सुबह हमने प्रयोग किया था, वही लेटकर करते रहना है। और फिर मौन में ही डूबते-डूबते सो जाना है।

●

पुनः जिजीविषा के सागर में

चतुर्थ प्रवचन

मनुष्य के जीवन में सबसे बड़ा दुर्भाग्य शायद यही है कि जीवन से उसकी आत्म-एकता न रही, उसकी एकतंत्रता, लयबद्धता, टूट गयी है। जीवन से हम कुछ दूर-दूर खड़े हो गये है। जीवन और हमारे बीच कोई सेतु न रहा, कोई सम्बन्ध न रहा। माँ के पेट से बच्चे का जन्म होता है, तब शरीर तो टूट जाता है माँ से अलग। तब एक भेद, एक पृथक्ता को यात्रा शुरू होती है, जो माँ के साथ संयुक्त था और पृथक् हो जाता है। शायद उसी पृथक्ता से यह भ्रम पैदा होता है कि शरीर अलग हो गया है, इसलिए प्राण भी अलग हो गये होंगे। शायद शरीर अलग हो गया, इसलिए भीतर के जीवन मे भी भेद पड़ गया होगा। माँ के शरीर से बच्चे का शरीर अलग होता है, लेकिन आत्मा एक और अपृथक् है, समस्त जीवन से। वहाँ कोई भेद नहीं, वहाँ कोई भिन्नता नहीं है। लेकिन उस अभेद का, उस अद्वैत का हमें कोई अनुभव नही होता, कोई स्मरण नही होता, कोई बोध नही होता।

मनुष्य के जीवन में यही एक दुर्भाग्य है। इस दुर्भाग्य को ही पार कर जाना साधक के लिए दूसरा चरण है। पहले चरण मे मैंने आपसे कहा, ज्ञान मिथ्या है, ज्ञान असत्य है। सीखे हुए शब्द सिद्धात और शास्त्रों से ज्यादा नही। अज्ञान, इग्नोरेंस मनुष्य की वस्तु-स्थिति है। अज्ञान को जो स्वीकार कर लेता है और यह स्मरण से भर जाता है कि मै नही जानता हूँ, जीवन और उसके बीच की पहली दीवाल गिर जाती है। लेकिन एक दूसरी दीवाल भी है। उसके सम्बन्ध में ही आज सुबह आपसे बात करनी है। वह भी गिर जानी चाहिए, तो ही व्यक्ति परमात्मा के सत्य को अनुभव करता है। जो परमात्मा का सत्य है वही स्वयं का भी सत्य है। उसे कोई जीवन कहे, कोई मोक्ष कहे, कोई ईश्वर कहे, इससे कोई भी भेद, कोई भी फर्क नही पड़ता। दूसरे दुर्भाग्य की दीवाल, पहले दुर्भाग्य की दीवाल भी ज्ञान की दीवाल है। दूसरे दुर्भाग्य की दीवाल क्या है? जो भी जिया जा सकता है उसके साथ एक हो जाना अनिवार्य है। एक छोटी-सी घटना से मै समझाने की कोशिश करूंगा।

कोई डेढ़ हजार वर्ष पहले चीन के एक सम्राट् ने सारे राज्य के चित्रकारों को खबर की कि वह राज्य की मुहर बनाना चाहता है। मुहर पर एक बाग देते हुए, चिल्लाते हुए मुर्गे का चित्र बनाना चाहता है। जो चित्रकार सबसे जीवन्त चित्र बनाकर ला सकेगा वह पुरस्कृत भी होगा, राज्य का कला-गुरु भी नियुक्त हो जायेगा और बड़े पुरस्कार की घोषणा की गयी। देश के दूर-

दूर कोने से श्रेष्ठतम चित्रकार बोलते हुए मुर्गों के चित्र बनाकर राजधानी में उपस्थित हुए। लेकिन कौन तय करेगा कि कौन-सा चित्र सुन्दर है ? हजारों चित्र आये थे। राजधानी में एक बूढ़ा कलाकार था। सम्राट् ने उसे बुलाया कि वह चुनाव करे कि कौन-सा चित्र श्रेष्ठ बना है। वह राज्य की मुहर बन जायेगी। उस चित्रकार ने उन हजारों चित्रों को एक बड़े भवन में बन्द कर लिया और स्वयं भी उस भवन के भीतर बन्द हो गया। साँझ होते-होते उसने खबर दी कि एक भी चित्र ठीक नहीं बना है। सभी चित्र गड़बड़ हैं। एक से एक सुन्दर चित्र आये थे। सम्राट् स्वयं देखकर दंग रह गया था, लेकिन उस बूढ़े चित्रकार ने कहा कि कोई भी चित्र योग्य नहीं है।

राजा हैरान हुआ। उसने कहा, 'तुम्हारे मापदण्ड क्या हैं, तुमने किस भाँति जाँचा कि एक भी चित्र ठीक नहीं है।'

उसने कहा, 'मापदण्ड एक ही हो सकता था और वह यह कि मैं चित्रों के पास एक जिन्दा मुर्गे को ले गया और उस मुर्गे ने उन चित्रों के मुर्गों को पहचाना भी नहीं, फिक्र भी नहीं की, चिन्ता भी नहीं की। अगर वे मुर्गे जीवन्त होते चित्रों में तो वह मुर्गा घबराता या बांग देता, या भागता, या लड़ने को तैयार होता, लेकिन उसने बिलकुल उपेक्षा की और चित्र की तरफ देखा भी नहीं। बस एक ही क्राइटेरिया, एक ही मापदण्ड हो सकता था। वह मैंने प्रयोग किया। कोई भी चित्र मुर्गे स्वीकार नहीं करते हैं कि चित्र मुर्गे के हैं।'

सम्राट् ने कहा, 'यह तो बड़ी मुसीबत हो गयी, यह मैंने सोचा भी नहीं था कि परीक्षा करवायी जायगी चित्रों की। लेकिन उस बूढ़े कला-गुरु ने कहा कि मुर्गे के सिवाय कौन पहचान सकता है कि चित्र मुर्गे का है ?'

राजा ने कहा, 'फिर अब तुम्हीं चित्र बनाओ।'

उस बूढ़े ने कहा, 'बड़ी कठिन बात है। इस बुढ़ापे में मुर्गे का चित्र बनाना बहुत कठिन बात है।'

सम्राट् ने कहा, 'तुम इतने बड़े कलाकार, एक मुर्गे का चित्र नहीं बना सकोगे ?'

उस बूढ़े ने कहा, 'मुर्गे का चित्र तो बहुत जल्दी बन जायगा, लेकिन मुझे मुर्गा होना पड़ेगा। उसके पहले चित्र बनाना बहुत कठिन है।'

राजा ने कहा, 'कुछ भी करो।'

उस बूढ़े ने कहा, 'कम-से-कम तीन वर्ष लग जायेंगे। पता नहीं मैं जीवित बचूँ या न बचूँ।'

तीन वर्ष के लिए राजधानी की तरफ से व्यवस्था कर दी गयी और बूढ़ा

जंगल में चला गया। छः महीने बाद राजा ने लोगों को भेजा कि पता लगाओ उस पागल का क्या हुआ ? वह क्या कर रहा है ? लोग गये। वह बूढ़ा जंगली मुर्गे के पास बैठा हुआ था। एक वर्ष बीत गया। फिर लोग भेजे गये। पहली बार जब लोग गये थे तब तक उस बूढ़े चित्रकार ने उन्हें पहचान लिया था कि वे उसके मित्र हैं और राजधानी से आये हैं। जब दोबारा वे लोग गये तो वह बूढ़ा करीब करीब मुर्गा हो चुका था। उसने फिक्र भी नहीं की और उनकी तरफ देखा भी नहीं, मुर्गे के पास ही बैठा रहा। तीन वर्ष पूरे हो गये। राजा ने लोगों को भेजा कि उस चित्रकार को बुला लाओ, चित्र बन गया होगा। तब वे गये तो उन्होंने देखा कि वह बूढ़ा तो एक मुर्गा हो चुका है, वह मुर्गे जैसी आवाज कर रहा है, वह मुर्गों के बीच बैठा हुआ है, मुर्गे उसके आसपास बैठे हुए हैं। वे उस बूढ़े को उठाकर लाये। बूढ़ा राजधानी में पहुँचा, दरबार में पहुँचा।

राजा ने कहा, 'चित्र कहाँ है ?'

उसने मुर्गे की आवाज की। राजा ने कहा, 'पागल, मुझे मुर्गा नहीं चाहिए, मुझे मुर्गे का चित्र चाहिए। तुम मुर्गा होकर आ गये हो। चित्र कहाँ है ?'

उस बूढ़े ने कहा, 'चित्र तो अभी बन जायगा। सामान ला दें, मैं चित्र बना दूँ।' और उसने घड़ी भर में चित्र बना दिये और जब मुर्गे कमरे के भीतर लाये गये तो चित्र को देखकर मुर्गे डर गये और कमरे के बाहर भागे।

राजा ने कहा, 'क्या जादू किया है तुमने इन चित्रों में ?'

उस बूढ़े ने कहा, 'पहले मुझे मुर्गा हो जाना जरूरी था, तभी मैं मुर्गे को निर्मित कर सकता था। मुझे मुर्गे को भीतर से जानना पड़ा कि वह क्या होता है। और जब तक मैं आत्मसात् न हो जाऊँ, मुर्गे के साथ एक न हो जाऊँ तब तक कैसे जान सकता हूँ कि मुर्गा भीतर से क्या है, उसकी आत्मा क्या है ?'

आत्मैक्य के बिना, जीवन के साथ एक हुए बिना, जीवन के प्राणों को, जीवन की आत्मा को भी नहीं जाना जा सकता। जीवन का प्राण भी प्रभु है। वही सत्य है। जीवन के साथ एक हुए बिना कोई भी रास्ता नहीं है कि कोई जीवन को जान सके। और जिसे हम जानते हैं, उसे हम जी भी कैसे सकते हैं ? इसीलिए तो हम सिर्फ नाम मात्र को जीवित मालूम होते हैं। इसीलिए तो हम मृत्यु से भयभीत प्रतीत होते हैं, क्योंकि जो व्यक्ति एक बार जीवन के स्वाद को चख लेगा उसके लिए मृत्यु बचती ही नहीं, उसके लिए कोई मृत्यु नहीं रह जाती। मृत्यु का भय इस बात का द्योतक है कि हमें जीवन का कोई पता नहीं है। जीवन का पता होगा भी नहीं।

जीवन के साथ हमने कभी एकता, एकांतता नहीं साधी, कभी हम लयबद्ध नहीं हुए। यह कैसे टूट गयी है लय, यह संगीत हमारा विच्छिन्न कैसे हो गया, जीवन के और हमारे बीच यह दरार, यह खाई कैसे पैदा हो गयी ? इसे समझ लेना जरूरी है, तो शायद यह खाई भी किसी क्षण पूरी की जा सकती है। यह खाई पैदा हो गयी है मनुष्य जाति में—आज तक मनुष्य को समझानेवाले कुछ ऐसे लोगों के कारण, जिन्होंने जीवन की निन्दा की है और जीवन का विरोध किया है, जीवन को असार कहा है, जीवन को दुख कहा है, जीवन को छोड़ देने के योग्य कहा है, जीवन से मुक्त हो जाने के लिए कहा है। जिन लोगों ने भी, जिन शिक्षकों ने भी जीवन की निन्दा की है, जीवन का 'कन्डमनेशन' किया है उन शिक्षाओं ने ही मनुष्य और जीवन के बीच एक खाई खड़ी कर दी है। जिसकी निन्दा हो, जिसका विरोध हो, जो असार हो, व्यर्थ हो, उसके साथ सम्बन्धित होने का मार्ग कहाँ रह जाता है ? और हमने जीवन की सब भाँति निन्दा की है। शरीर की निन्दा की है। शरीर जीवन का प्रकट रूप है। संसार की निन्दा की है, क्योंकि संसार परमात्मा का प्रकट रूप है। पदार्थ की निन्दा की है, क्योंकि पदार्थ प्राण का प्रकट रूप है। जो भी प्रकट है, उस सबकी हमने निन्दा की है और अप्रकट की प्रशंसा की है। अप्रकट की न मुट्ठी बाँधी जा सकती है, न अप्रकट को छुआ जा सकता है, न अप्रकट को देखा जा सकता है। अदृश्य की तो केवल बातें की जा सकती हैं, दिखायी तो पड़ता है दृश्य। अरूप की तो केवल चर्चा हो सकती है, पकड़ में तो आता है रूप। और रूप की, आकार की, दृश्य की निन्दा की गयी है। स्वभावतः अरूप की सिर्फ चर्चा रह गयी है हमारे हाथों में। और स्मरण रहे कि रूप को जो जान ले वह अरूप से परिचित हो सकता है। जो पदार्थ को जान ले वह अपदार्थ से परिचित हो सकता है। जो शरीर को पहचान ले, वह आत्मा से भी सम्बन्धित हो सकता है। लेकिन जो रूप का ही विरोध करता हो वह अरूप तक जाने की अपनी सीढ़ी तोड़ देता है, इसका उसे कुछ पता भी नहीं। लेकिन रूप की, आकार की और जीवन की, पदार्थ की और शरीर की और संसार की इतनी निन्दा की गयी है, इतना विरोध किया गया है, इतनी घृणा की गयी है जिसका हिसाब लगाना आज कठिन है। काश, जीवन की इतनी प्रशंसा की गयी होती ! काश, इतने लोगों ने जीवन के आनन्द के गीत गाये होते ! काश, इतने मुखों से, इतनी वाणियों से जीवन की गरिमा और गौरव अभिव्यक्त हुई होती ! तो आज पृथ्वी कुछ दूसरी ही होती, आज पृथ्वी धर्म से भरी होती, आज जीवन आनन्द से भरा होता, आज जीवन एक संगीत बन गया होता। लेकिन मनुष्य जाति के अब तक के शिक्षकों ने

जीवन की निन्दा की है, विरोध किया है। यह जो विरोध है, यह जो जीवन की बुनियादी रूप से निन्दा है, कंडमनेशन है, उसने हमारे और जीवन के बीच अगर एक दीवाल खड़ी कर दी हो तो बिलकुल स्वाभाविक है। धर्म का विचार करते ही यह ख्याल आना शुरू हो जाता है कि जीवन व्यर्थ है, जीवन छोड़ देना है, जीवन से हट जाना है, जीवन से मुक्त हो जाना है, आवागमन से मुक्त हो जाना है। धर्म का चिन्तन ही कुछ मरणोन्मुखी, कुछ 'स्वीसाइडल', कुछ आत्महत्यावादी, कुछ जीवन-निषेध का अंग बन गया है। जीवन के आनन्द में सम्मिलित होने का आमन्त्रण नहीं होता। धर्म जीवन से आँख बन्द कर लेने का, जीवन से हट जाने का, उदासीन हो जाने का निमन्त्रण मालूम होता है और तब हम चित्त से उदासीन हों और चित्त से असार समझें और चित्त हमारा यह कहे कि सब व्यर्थ है और हम जन्मे यह हमारे पापों का कारण है और जिस दिन हमारे पाप नष्ट हों उस दिन हमारे जन्म का कोई कारण नहीं रह जायेगा। हम मोक्ष में उस जगह जहाँ कोई जन्म नहीं, कोई मृत्यु नहीं, जहाँ कोई देह नहीं, जहाँ कोई इन्द्रियाँ नहीं, जहाँ कोई रूप नहीं उस अरूप में प्रविष्ट हो जायेंगे। यह भाव-दशा हो तो फिर जीवन की इस व्यर्थ लीला से सम्बन्धित नहीं हुआ जा सकता है।

यह बात सबसे पहले समझ लेने जैसी है कि मनुष्य को अधार्मिक बनाने वाले वे लोग नहीं हैं, जिन्होंने ईश्वर से इनकार किया है। वे लोग भी नहीं हैं जिन्होंने आत्मा को अस्वीकार किया है। बल्कि वे लोग हैं, जिन्होंने रूप का खण्डन किया है और निन्दा की है और जीवन को प्रकट अभिव्यक्ति को असार कहा है।

एक स्मरण मुझे आता है। एक मित्र, एक संन्यासी, मेरे पास उस दिन मेहमान थे। मेरे आस-पास जो बड़ी बगिया थी, जिसमें बहुत फूल थे, आते ही उन्होंने फूलों को ऐसे देखा जैसे कोई शत्रु को देखता हो और उन्होंने मुझसे कहा—आपको भी फूलों से प्रेम है? आपको भी फूलों से कोई लगाव है?

मैं चुप रह गया, क्योंकि जो फूलों को भी नहीं समझ पा रहा हो, वह फूलों की प्रशंसा में कही गयी बात को समझ पायेगा इसकी कोई आशा नहीं थी। फिर रात हुई और एक मित्र कुछ गीत सुनाने आये थे तो मैं गीत सुनने बैठ गया। तो उस संन्यासी ने कहा—आपको गीतों से भी लगाव है, गीतों से भी प्रेम है?

मैं फिर हँसा और चुप रह गया, क्योंकि जो गीत ही नहीं समझ पा रहा हो, गीत को, गीत की प्रशंसा में कही गयी बात को समझ सकेगा इसकी कोई

धारणा न थी। फिर रात हम खाना खाने बैठे। वे इस भाँति खाना खाने लगे जैसे कोई एक बोझ भरा काम किया जा रहा हो, कोई एक जबरदस्ती, कोई एक नेसेसरी ईविल, कोई एक आवश्यक बुराई हो जो करनी पड़ गयी है, मजबूरी कि जो खाना पड़ रहा है! मैंने उनसे कहा, 'आप यह क्या कर रहे हैं?'

उन्होंने कहा, 'मैं अस्वाद का व्रती हूँ, अस्वाद का व्रत लिया है। भोजन ऐसे करना है जैसे कोई मिट्टी खा रहा हो। कोई स्वाद नहीं लेना है।'

मैंने कहा, 'यह तो मैं समझ गया था। जब फूलों को देखकर आपके हृदय में जो भाव उठा, जब गीत को सुनकर जो भाव उठा तभी मैं समझ गया था।'

यदि हम ठीक से देखें तो फूल आँख का आहार है और गीत और संगीत कान का आहार है। सब भोजन है। जीवन चारों तरफ एक भोजन है, एक आहार है। आँख जब भरे प्रकाश को देखकर आनंदित होती है तो आँख को भोजन मिल गया और कान जब वीणा को सुनकर प्रफुल्लित हो उठते हैं, तो उन्हें भी भोजन मिल गया। चौबीस घंटे सभी इन्द्रियों से आहार चल रहा है। परमात्मा बहुत द्वारों से प्रवेश पा रहा है। परमात्मा के ये सभी प्रवेश-द्वार आनन्द से प्रसित हों, स्वाद से, अनुग्रह से ग्रेटीट्यूड से भरे हुए हों तो वैसे आदमी का सम्बन्ध जीवन से हो सकता है। लेकिन जो इन सभी द्वारों पर घृणा का भाव लिये खड़े हों, विरोध, शत्रुता लिये खड़े हों, जो कान इसलिए बन्द कर लेते हों कि संगीत न सुनायी पड़ जाये, जो स्वाद का शत्रु होना चाहते हैं, जो आँख बन्द कर लेते हों उनका जीवन से कोई सम्बन्ध नहीं हो सकता। आँख फोड़ लेने वाले लोग भी हुए हैं। उन्होंने अपनी आँख फोड़ ली। इसके तो वे मालिक थे, लेकिन उनके प्रभाव में सारे मनुष्य जाति की आँखें धुंधली हो गयी है—इसका उनको कोई हक नहीं था। आँखें फोड़ ली हैं लोगों ने कि कहीं रूप आकर्षित न कर ले। जीवन जहाँ-जहाँ से प्रवेश पा सकता है मनुष्य के भीतर, वे सारे द्वार बन्द कर लेते हैं। ऐसे बन्द द्वारों वाला व्यक्ति अहंकार को तो उपलब्ध हो सकता है, विस्मय भाव को कभी भी उपलब्ध नहीं हो सकता है। ऐसा व्यक्ति धीरे-धीरे इस भाव से तो भर सकता है कि मैं कुछ हूँ, लेकिन जीवन क्या है, इसका उसे कोई ओर-छोर नहीं मिल सकता है। जीवन को जानने की सम्भावना तो तभी है जब हमारा सारा व्यक्तित्व एक ओपनिंग, एक द्वार बन जाये। गीत के लिए, हवाओं के लिए, सौंदर्य के लिए, संगीत के लिए, स्वाद के लिए, सुगन्ध के लिए, सब तरफ हमारा जीवन एक द्वार बन जाये।

साधक मेरी दृष्टि में एक द्वार बन जाता है। सब भाँति से एक द्वार बन जाता है। जीवन का जो क्षुद्रतम है, वह भी उसे विराट् का ही अंग प्रतीत

होता है। वह जो छोटे-छोटे अणु हैं वह भी उसे ब्रह्मांड प्रतीत होते हैं। वह जो छोटा-सा फूल खिलता है, यह जो कोयल कहीं बोल रही है अनजान में, यह सब उसके प्राणों के अंतर्गीत बन जाते हैं, अंतर्नाद। वह सब स्वीकार कर लेता है। जीवन जो भी देता है, सभीको अनुग्रहपूर्वक स्वीकार कर लेता है। भोजन करना भी उसे प्रार्थना के तुल्य है, स्नान करना भी उसे पूजा की भाँति है। हवाओं में साँस लेना भी उसे भगवान् के लिए धन्यवाद है। जीवन से सम्बन्ध और आत्मैक्य तभी हो सकता है जब जीवन के प्रति निन्दा का भाव गिर जाये। कल मैंने आपको ज्ञान छोड़ने को कहा। आज मैं आपसे जीवन के प्रति निन्दा के भाव को छोड़ने के लिए कहना चाहता हूँ। लेकिन हमारे चित्त में गहरे, बहुत गहरे संस्कार बैठ गये हैं जीवन की हर चीज की निन्दा के। अगर आपको बुद्ध कहीं हँसते हुए मिल जायें तो बड़े चिन्तित हो जायेंगे आप। अगर महावीर आपको कहीं वीणा सुनते मिल जायें तो आप बहुत हैरान हो जायेंगे। क्रिश्चियन्स कहते हैं, जीसस नैवर लाफ्ड।'—'जीसस कभी हँसे नहीं।' हम उदास संतों को देखने के आदी हो गये हैं। जीवन के प्रति जिन्होंने मृतक का भाव ले लिया है, जीवन के प्रति जो जीते-जी मर जाने की कोशिश में लग गये हैं, उनकी छाया मनुष्य के चित्त पर गहरी हो गयी है, बहुत अंधकारपूर्ण हो गयी है। हँसता हुआ संत हमारी कल्पना में भी नहीं आता है। हम बुरे आदमी को हँसता हुआ देख सकते हैं, भले को नहीं। भले आदमी का हँसी के साथ कोई सम्बन्ध नहीं। जीवन के आनन्द का कोई सम्बन्ध नहीं। धार्मिक लोग वही हो सकते हैं, जो किसी भाँति रुग्ण हों, उदास हों, बीमार हों। धार्मिक लोग वे ही हो सकते हैं जो जीवन के प्रति एक शत्रुता का भाव लेकर किसी कोने में खड़े हो गये हों। रंगों का, सुगन्धों का धार्मिक आदमियों से क्या सम्बन्ध है ? लेकिन नहीं, मैं आपसे कहना चाहता हूँ कि ठीक धार्मिक व्यक्ति और ही तरह होगा।

तीन संतों के बाबत मैंने सुना है। वे किसी अज्ञात देश में हुए और 'तीन हँसते हुए संत' उनका नाम था,—थ्री लाफिंग सैंट्स्। इसी तरह ही वे जाने जाते हैं। वे जिस गाँव में जाते उस गाँव में हँसी की, खुशी की एक लहर पहुँच जाती। वे हँसते, वे इतना हँसते कि हँसना संक्रामक हो जाता और धीरे-धीरे पूरा गाँव हँसने लगता। वे जिस चौराहे पर खड़े हो जाते वहाँ हँसी के फौव्वारे छूट जाते। लोग उनसे पूछते—आपका कोई उपदेश नहीं है ?

वे कहते—एक ही हमारा उपदेश है कि जीवन में हँसी के भाव को स्वीकार कर लो। जीवन को रोता हुआ जो स्वीकार करेगा, जीवन से उसका कोई

सम्बन्ध नहीं हो सकता। रोते हुए आँसुओं से कोई आदमी प्रभु के मन्दिर में कभी नहीं प्रविष्ट हुआ है, न कभी हो सकेगा। मुस्कराहटें तो उसका मार्ग बन सकती हैं। मुस्कराहटों के इन्द्रधनुष तो उस तक पहुँचने के सेतु बन सकते हैं, लेकिन रोती हुई सूरतें नहीं। एक ही हमारा सन्देश है कि लोग प्रफुल्लित मन से जीवन को अंगीकार करना सीख जायें।

वे तीनों बूढ़े हो गये और गाँव-गाँव भटकते रहे। मुझे पता नहीं वैसे सन्त कहीं और भी हुए हों। काश, वैसे सन्त कहीं और होते तो यह दुनिया आज दूसरी ही होती। वे तीनों बूढ़े हो गये। फिर उन तीनों में से एक सन्त की मृत्यु हो गयी। जिस गाँव में एक सन्त की मृत्यु हुई, गाँव के लोगों ने कहा, अब तो रोयेंगे वे जरूर, अब तो दुखी होंगे, आज तो हम उनकी आँखों में आँसू देख लेंगे। गाँव के लोग इकट्ठे हो गये झोंपड़े के पास, लेकिन वे दोनों हँसते हुए अपने मृतक साथी को लेकर बाहर निकले और उन्होंने गाँव के लोगों से कहा कि आओ और देखो, कितना अद्भुत आदमी था यह। लोगों ने देखा, उसकी लाश पड़ी है, लेकिन उसके होंठ मुस्करा रहे हैं। वह जो आदमी मर गया है वह हँसते हुए ही मर गया है और मरते वक्त कह गया है अपने मित्रों से कि एक कृपा करना, मुझे जब ले जाकर मेरी अर्थी को तुम जलती हुई लकड़ियों पर रखो तो मेरे वस्त्र मत निकालना, मुझे स्नान मत कराना।

उस देश में ऐसा रिवाज था कि आदमी मर जाय तो कपड़े निकालना, स्नान कराना, नये कपड़े पहना देना। एक नयी यात्रा पर कोई जाता है तो उसे नये कपड़े तो कम-से-कम पहना ही देने चाहिएँ, लेकिन वह आदमी कह गया है कि नहीं, मेरे कपड़े मत बदलना, मुझे स्नान मत कराना, इन्हीं कपड़ों में मुझे चिता पर चढ़ा देना। फिर वह सारा गाँव सन्त की अर्थी को लेकर मरघट पर पहुँच गया। हजार लोग इकट्ठे हो गये हैं, चिता जल गयी है, अर्थी रख दी गयी है। जैसे ही आग लगी है शरीर जलना शुरू हुआ है, उस अर्थी को चिता पर चढ़ा दिया गया है। आग लग गयी है, लोग उदास खड़े हैं। हजारों की भीड़ है, लेकिन फिर धीरे-धीरे भीड़ में हँसी छूटने लगी। लोग हँसने लगे। हँसी फैलती चली गयी, हँसी बिलकुल संक्रामक हो गयी। क्या हो गया था? जैसे ही लाश को आग लगी, लोगों को पता चला कि वह आदमी अपने कपड़े के भीतर पटाखे, फुलझड़ी छिपा कर मर गया है। कपड़े में उसने भीतर पटाखे, फुलझड़ी छिपा कर रखे हैं। लाश को आग लगी है, पटाखे छूटने लगे हैं, फुलझड़ियाँ छूटने लगी हैं और लोग हँसने लगे हैं और वह कहने लगे कि अद्भुत था वह आदमी। वह मरा हँसता हुआ, जिया हँसता हुआ और मरने

के बाद भी लोग हँसते हुए उसे विदा दें इसकी भी व्यवस्था, इसका भी आयोजन कर गया। उस गाँव के लोगों को पता चला कि हँसते हुए जिया जा सकता है, हँसते हुए मरा जा सकता है। मरने के बाद भी पीछे हँसी की सम्भावना पैदा की जा सकती है। ऐसे व्यक्ति को मैं धार्मिक व्यक्ति कहता हूँ।

रोते, उदास लोगों को विदा कर दें। धर्म उनसे बहुत पीड़ित हो चुका। मनुष्य के जीवन में मनुष्यता के ऊपर जो सबसे बड़ा दुर्भाग्य है वह रोते हुए लोगों का प्रभाव है। रोते हुए लोगों से हम पीड़ित हैं, रुग्ण और उदास लोगों से हम पीड़ित हैं। जो लोग जीवन की खुशी को उपलब्ध नहीं कर पाते, उनकी स्थिति वैसी है जैसी उस लोमड़ी की आपने सुनी होगी जो अंगूरों के एक वृक्ष के नीचे पहुँच गयी थी। वृक्ष लटके थे अंगूर पके हुए और वह छलांग लगाने लगी, लेकिन वृक्ष था ऊँचा और लोमड़ी नहीं पहुँच सकी तो वह वापस लौट पड़ी और रास्ते में कहती गयी, खट्टे अंगूर हैं, उन्हें पाने की भी क्या जरूरत है।

जीवन का आनन्द जीवन के फूलों में और जीवन के गीतों में जो उपलब्ध नहीं कर पाते, वे कहते हैं, जीवन बुरा है, जीवन असार है। अपनी असफलता को वे जीवन की निन्दा में छिपा लेते हैं और जिन्हें जीवन के ही अंगूर नहीं मिल पाये उन्हें परमात्मा के अंगूर मिल पायेंगे, इसकी कोई उम्मीद नहीं है। जीवन के रस से तो यह पता मिल सकता है कि परमात्मा कहाँ है, लेकिन जीवन से विरस होकर तो उसका पता-ठिकाना भी नहीं मिल सकेगा। जीवन के भीतर जाकर तो वह खबर मिल सकती थी कि रास्ता कहाँ ले जाता है, प्रभु तक कैसे जायें, लेकिन जीवन को ही पीठ करके जो खड़े हो गये हों, उनके लिए कोई रास्ता नहीं। प्रभु कहीं भी है अगर, तो जीवन के भीतर, जीवन के विरोध में नहीं। जीवन के विपरीत नहीं, लेकिन अस्वस्थ, रुग्ण, हारे हुए लोग, पराजित लोग अपने को दोष न देकर जीवन को ही दोष दे देते हैं। हारा हुआ आदमी हमेशा इसी कोशिश में होता है कि कोई बहाना मिल जाय, खुद को दोष न देना पड़े। स्मरण रखिये, हारे हुए लोग अब तक धर्म में उत्सुक होते रहे हैं। हारे हुए लोगों की जमात धर्म के आसपास इकट्ठी हो गयी है। मंदिरों और मस्जिदों में जाइये, वहाँ हारे और पराजित लोग दिखायी पड़ेंगे। आदमी जब मरने के करीब पहुँचने लगता है, जब जीवन की सारी अँगुलियाँ छूट जाती है, बूढ़ा होने लगता है, लगता है कि जीवन अब गया, तब गया। तब वह मन्दिर की यात्रा शुरू करता है, तब वह सोचता है कि मन्दिर का वक्त आ गया है, तब जीवन का वक्त गुजर जाता है,

तब मन्दिर का वक्त आता है। अगर कहीं मन्दिर है तो जीवन के घनेपन में। यह जो उदास, यह जो निराश, यह जो असफल लोगों का समूह है, इसने धर्म को आक्रान्त कर रखा है। मैं आपसे निवेदन करना चाहता हूँ इस दूसरी चर्चा में कि अपने को उदास और रोते हुए लोगों से मुक्त कर लीजिये। रुग्ण, अस्वस्थ, विक्षिप्त लोगों से मुक्त कर लीजिये। अगर जीवन में अंगूर न मिलते हों तो खट्टे मत कहिये। यह कहिये कि मेरी छलांग छोटी है।

छलांग बड़ी की जा सकती है। साधक छलांग बड़ी करने का प्रयास करता है। पलायन-वादी, स्केपिस्ट कहता है, अंगूर खट्टे हैं और लौट जाते हैं। छलांग बड़ी करिये। जीवन हाथ में न आता हो तो हाथ और बढ़ाइये। आँखें न देख पाती हों तो आँखें और खोलिये। कान न सुन पाते हों तो कानों को और प्रशिक्षण दीजिये। भोजन में न मिल पाता हो परमात्मा, तो अस्वाद पर मत लौट जाइये। क्योंकि अस्वाद अंगूरों को खट्टा कहने की दलील है। तो स्वाद को और शिक्षित कीजिये, स्वाद को और साधिये, क्योंकि जो लोग जानते थे उन्हें अन्न में भी ब्रह्म दिखायी पड़ सका है। जो लोग जानते हैं उन्हें स्वर में भी ब्रह्म दिखायी पड़ सका है। जो लोग जानते हैं उन्हें रूप में भी उसके ही दर्शन हो सके हैं। सौन्दर्य भी उन्हें उसकी ही खबर बन गयी है; सब कुछ उसकी ही खबर बन गयी है। शरीर का सौन्दर्य भीतर छिपे परमात्मा की खबर बन जाती है, लेकिन देखनेवाली आँखें चाहिएँ। आँखें मत फोड़िये। आँख को शिक्षित कीजिये। इंद्रियों की शिक्षा साधना। इंद्रियों का विरोध नहीं, दमन नहीं, सप्रेशन नहीं। एक-एक इंद्रिय ऐसी साधी जा सकती है कि उसके द्वार से प्रभु तक पहुँचने का मार्ग बन जाये। तो मैं आपसे कहूँगा, स्वाद है तो पूर्ण स्वाद लीजिये, अस्वाद नहीं। भोजन कर रहे हों तो ऐसा करिये, भोजन करना ही एकमात्र कर्तव्य रह जाये। सारा प्राण, सारी देह, सारी शक्तियाँ, समग्र चेतना भोजन कर रही है। जरा-सा स्वाद छूट न जाये। स्वाद में इतनी लीनता, इतनी तल्लीनता, इतना आत्मभाव! फिर आपको पता चलेगा कि अन्न प्रभु हो जाता है, फिर आपको पता चलेगा कि स्वाद भी उसकी खबर है और तब भोजन करके आपका हृदय धन्यवाद से भर जाये परमात्मा के लिये तो आश्चर्य नहीं। तब सौन्दर्य में ही देखिये और परिपूर्ण तल्लीनता से हो, परिपूर्ण एकात्मभाव से। और जब आपको सौन्दर्य के पीछे अरूप के दर्शन होने लगें तो आश्चर्य नहीं। रूप तो केवल ऊपर की खोल है, भीतर अरूप छिपा है। जब आपको कोई फूल सुन्दर लगता है तो क्या सुन्दर लगता है? क्या आपको फूल की पंखुड़ियाँ, उनमें दौड़ते हुए केमिकल्स, खनिज, क्या सुन्दर लगता है? नहीं, फूल

की पंखुड़ियाँ भी नहीं, फूल का रसायन भी नहीं। लेकिन उन सबके मेल से जो अरूप है उसकी झलक मिलनी शुरू हो जाती है। वह जो पीछे छिपा है उस सबके मेल से वह जो पीछे छिपा है उसकी खबर मिलनी शुरू हो जाती है। जब आप वीणा सुनते हैं तो तारों की झंकार अच्छी लगती है, या हाथों का प्रभाव, क्या अच्छा लगता है ? नहीं। लेकिन स्वरों के माध्यम से वह जो स्वरों के बीच में अस्वर छिपा हुआ है, सौन्दर्य छिपा हुआ है, स्वरों के बीच-बीच में वह जो छिपा हुआ है उसकी खबर मिलनी शुरू हो जाती है। वह जो संगीत के पीछे निःशब्द छिपा हुआ है, संगीत से वह प्रकट होने लगता है। जीवन की यह अद्भुत लीला है। यहाँ जीवन में जो कुछ स्वयं प्रकट होता है वह कंट्रास्ट में, विरोध में प्रकट होता है।

स्कूल में हम बच्चों को पढ़ाते हैं तो काला तख्ता लगा लेते हैं। सफेद खड़िया से लिखते हैं इस पर। सफेद खड़िया काले की पृष्ठभूमि में प्रकट होती है, पूर्णता से प्रकट होती है। सफेद तख्ते भी बन सकते हैं, लेकिन तब पढ़ना मुश्किल हो जायेगा। सफेद खड़िया लिखेगी, सफेद तख्ते पर कुछ भी दिखायी न पड़ेगा। जीवन हमेशा कंट्रास्ट में प्रकट होता है। आत्मा को प्रकट होना है तो शरीर में प्रकट होती है। शरीर ब्लैक बोर्ड की तरह भूमि बन जाती है आत्मा के प्रकट होने के लिए। सौन्दर्य को प्रकट होना है तो रूप में प्रकट होता है ताकि अरूप कंट्रास्ट ले ले, दिखायी पड़ सके। शून्य को प्रकट होना है तो संगीत में प्रकट होता है। उल्टी है बात। संगीत तो ध्वनि है। शून्य निर्ध्वनि है। लेकिन निर्ध्वनि को प्रकट होना हो तो ध्वनि का माध्यम, ध्वनि का बैकग्राउंड, ध्वनि की पार्श्वभूमि चाहिए; परमात्मा को प्रकट होना है तो पदार्थ का संसार चाहिए। जीवन हमेशा पृष्ठभूमि मांगता है अभिव्यक्ति के लिए। अगर पृष्ठभूमि न हो तो जीवन प्रकट नहीं हो सकता। जीवन की सारी अभिव्यक्ति कंट्रास्ट में है। लेकिन अगर हम तख्ते को मिटा दें तो फिर सफेद अक्षर भी विलीन हो जायेंगे। अगर हम शरीर के शत्रु हो जायें तो आत्मा भी हमसे दूर हो जायेगी। अगर हम संसार के दुश्मन हो जायें तो हम परमात्मा की तरफ जाना भी बन्द हो जायेंगे। यह सीधा-सा गणित दिखायी नहीं पड़ सकता। यह दो और दो चार जैसी बात दिखायी न पड़ सकी। क्यों नहीं दिखायी पड़ सकी ? न पड़ने के कुछ कारण हैं। हमें भी वही बात स्वीकृत हो जाती है जो हमारी जीवन-स्थिति के अनुकूल पड़ती है। हम सब भी हारे हुए लोग हैं, इसलिए हारे हुए लोगों का संदेश हमें ठीक सुनायी पड़ जाता है। हम सब भी पराजित लोग हैं, इसलिए पराजित लोग जब कहते हैं कि जीवन असार है तब हमें भी यह बात बिल्कुल

ही ठीक मालूम पड़ने लगती है। जो हमारी आदत का हिस्सा हो जाती है, वही हमारी समझ में आता है, शेष हमारी समझ में नहीं आता।

मैंने सुना है, एक मछुवा जीवन भर मछलियों को मारने का धंधा करता रहा। वह एक देश की राजधानी में पहुँच गया और राजधानी घूमकर देखने लगा—चकित, विस्मयविमुग्ध। फिर वह उस रास्ते पर पहुँच गया जहाँ देश के इत्र विकते थे, सुगंधियाँ विकती थी। वह सुगंधियों का वाजार था। जाते ही उसे अपनी नाक वन्द कर लेनी पड़ी, क्योंकि उसे वड़ी वदवू मालूम पड़ी। उसने मछलियों की गन्ध को ही जाना था। उसीको वह सुगन्ध कहता था। वह विलकुल हैरान हो गया है। भागने की कोशिश की उसने कि वाजार से निकल जाये। लेकिन लम्बा वाजार था। राजधानी का वाजार था। वहाँ दुनिया की श्रेष्ठ से श्रेष्ठ सुगंधियाँ थी। आखिर वह वेहोश होकर गिर पड़ा। भीड़ इकट्ठी हो गयी। पास के दूकानदार कीमती से कीमती सुगन्धें लेकर आ गये कि शायद सुगन्ध सुंघाने से उसे होश आ जाये। उन्हें पता भी नहीं कि वह सुगन्धियों की वजह से ही वेहोश हो गया है। वह उसे सुगन्धियाँ सुंघाने लगे। वह तड़फड़ाने लगा और उससे तो वोलते भी नही वन पड़ रहा है। वह और वेहोश हो गया और तभी उस भीड़ में एक आदमी वाहर आया जो पहले मछुआ रह चुका था। उसने कहा—मित्रो, तुम वड़ा गड़वड़ किये दे रहे हो। वह आदमी मर जायेगा। आप हटो, अपनी सुगन्धियाँ दूर हटाओ। इसीके कारण वह वेहोश हो गया है।

लेकिन उसके पास उसका झोला था जिसमें वह मछलियाँ वाजार में वेचने लाया था। उसने उसमें पानी थोड़ा छिड़का और उस आदमी के नाक के पास वह झोला रख दिया। उसने गहरी सांस ली, आंख खोली और उसने कहा. "दिस इज रियल परफ्यूम"—यह असली सुगन्ध है।

स्वाभाविक है, हमें वही वात ठीक मालूम पड़ती है जिसके हम आदी हैं। हमें वही सुगन्धि मालूम पड़नी है जिसे हम चाहते हैं चूँकि सभी मनुष्य जीवन की कला में दीक्षित नहीं है और पराजित हो जाते है। इसलिए जव कोई पराजित खड़े होकर कहता है कि असार है सव, व्यर्थ है सव, छोड़ देने जैसा है सव, तो हाथ हमारे भी उठ जाते हैं कि आप ठीक कहते हैं, विलकुल ठीक कहते है। जीवन की कला ही नहीं सिखायी गयी। जीवन एक कला है। जन्म के साथ ही जीवन नहीं मिल जाता। जीवन एक लम्बा प्रशिक्षण है और सूक्ष्मतम कला है जीवन की।

इन जीवन-कला का दूसरा सूत्र मैं आपसे कहना चाहता हूँ। जो भी है, जो

भी उपलब्ध है, इंद्रियों से जो भी आता है उस सबको अत्यंत आनन्द से, अत्यंत ग्रेटिट्यूड से स्वीकार कीजिये और आप पाइयेगा कि जीवन से आपका सम्बन्ध शुरू हो गया है। हमारे भाव तोड़ते हैं, हमारे भाव जोड़ते हैं। हमारे भाव जोड़ सकते हैं। हमारा दुर्भाव तोड़ देता है, हमारा सद्भाव जोड़ देता है। जीवन के प्रति सद्भाव रखना चाहिए। मैं उन सारे लोगों को परमात्मा का शत्रु कहता हूँ, एनीमीज ऑफ गॉड जो जीवन के प्रति दुर्भाव सिखाते हैं।

कल ही एक मित्र आये। उन्होंने कहा, 'मैं तो ६० बरस का हो गया हूँ, लेकिन अब भी सुन्दर स्त्री को देखता हूँ तो बेचैन और परेशान हो जाता हूँ। जिन्दगी भर मैंने कोशिश की है कि अपने मन को स्त्रियों से अलग कर लूँ, लेकिन इस उम्र में भी स्त्री मेरा पीछा कर रही है।'

मैंने कहा, 'वह पीछा करती ही चली जायेगी। आप कब्र में चले जायेंगे और वह पीछा करती चली जायेगी। आप पीछा करवा रहे हैं। जीवन की कला स्त्री से भागना नहीं सिखाती है, सौन्दर्य से आँखें फेरना नहीं सिखाती है, बल्कि इस जिज्ञासा में और ऊपर उठ जाना कि जो सौन्दर्य दिखायी पड़ रहा है, वह कहाँ से आ रहा है। सौन्दर्य क्या है? अगर एक स्त्री में भी सौन्दर्य दिखायी पड़ा तो दिखायी पड़ सकता है। फूल में दिखायी पड़ सकता है तो स्त्री में क्यों नहीं, पुरुष में क्यों नहीं, आँखों में क्यों नहीं, शरीर में क्यों नहीं? क्योंकि फूल भी एक शरीर है, चाँद भी एक शरीर है, तारे भी एक शरीर हैं। तो आदमी के शरीर का ही कसूर है। लेकिन अगर सौन्दर्य का विरोध नहीं होता, अगर निन्दा की दृष्टि नहीं होती, तो शायद उस सौन्दर्य में और गहरा प्रवेश होता। उस सौन्दर्य की ध्वनि पर सवार होकर मन और आगे जाता और उस जगह पहुँच जाता जहाँ से सारा सौन्दर्य आता है, उस उत्स पर पहुँच जाता, जहाँ से जीवन के सारे आनन्द और सारी खुशियाँ आती हैं तो शायद फिर एक स्त्री मन्दिर बन जाती, उसके भीतर परमात्मा दिखायी पड़ जाता। फिर चाहे एक पुरुष प्रभु बन जाता। उसके भीतर परमात्मा दिखायी पड़ जाता। तो मैं नहीं कहता कि आप भागें इस सौन्दर्य से, रूप से, संगीत से, सुगन्ध से, सुवास से, स्वाद से, किसी से भी मत भागें। सभी के भीतर खोज करें कि जो आकर्षित कर रहा है, जरूर वहाँ कहीं भीतर परमात्मा होगा।

जहाँ भी आकर्षण है, जहाँ भी ऐट्रैक्शन है, स्मरण रखें कि वहाँ कहीं परमात्मा का केन्द्र होगा, अन्यथा कोई आकर्षण सम्भव नहीं। आकर्षण को सूचना समझें और भीतर और भीतर और गहरे और गहरे प्रवेश करें। चित्त की सारी

दें और दूर से आप पायेंगे कि सारी खबरें उसकी खबरें हैं। फूल से भी वही झाँकता है, सागर से भी वही, चाँद से भी वही, स्त्री से भी वही, बच्चों से भी वही, सबसे वही झाँकता है। उसकी खोज करनी हो तो द्वार खुले होने चाहिए। इन सब तरफ से जो संदेश आयेगा उसे हृदय तक ले जाने को हमेशा तैयार हूँ।

यह मनुष्य-जाति बिलकुल दूसरी मनुष्य की जाति हो सकती है। यह पूरी ह्युमैनिटी एक ट्रांसफर्मेशन से गुजर सकती है। एक रूपांतरण हो सकता है। लेकिन नहीं, निंदकों का प्रभाव हमारे ऊपर बहुत ज्यादा है। जीवन के प्रशंसकों का हमारे ऊपर कोई प्रभाव नहीं। तो यह दूसरी बात आपसे कहना चाहता हूँ। इन तीन दिनों में तो प्रयोग करेंगे ही। द्वार खोलें मन का। समस्त आकर्पण के लिए द्वार खोल दें। जीवन के समस्त स्वाद के लिए द्वार खोल दें और जीवन के प्रत्येक अनुभव में आनन्द की गहरी-से-गहरी खोज और आत्मलीनता खोजें और जीवन की जो मधुर वर्षा हो रही है, उसमें डूब जायें, उसमें एक हो जायें, उससे जुड़ जायें, उसके और अपने बीच कोई फासला न रखें। जैसे एक सूखा पत्ता हवा में उड़ता है, हवा पूर्व को ले जाती है तो पूर्व चला जाता है, पश्चिम ले जाती है तो पश्चिम चला जाता है। जमीन में गिरा देती है तो जमीन पर गिर जाता है, आकाश में उठा देती है तो बादलों में उड़ जाता है।

एक सूखा पत्ता हो जायें और जीवन के सारे रस, जीवन का सारा आनन्द, जीवन सारे अनुभव में गुजरने दें। कोई बाधा न डालें, कहीं भी कोई बैरियर खड़ा न करें, कहीं कोई दीवाल न बनायें। जीवन के सागर में बह जायें। तो, स्मरण रखें कि वह सागर अंततः परमात्मा तक ले जानेवाला बन जाता है। जीवन में जो बहते हैं वे तो कभी पहुँच जाते हैं, लेकिन जीवन के विरोध में पीठ करके जो खड़े हो जाते हैं वे न कभी पहुँचे हैं, न कभी पहुँच सकते हैं, न कभी पहुँच सकेंगे। यह दूसरी बात आपसे कहना चाहता हूँ।

तीसरे सूत्र पर कल सुबह हम बात करेंगे। इस पर थोड़ा प्रयोग करें तो ही पता चलेगा। वह जो भीतर निंदक बैठा है, वह इनकार करेगा, क्योंकि बहुत खतरा हो सकता है। वह जो भीतर कंडमनेशन बैठा है, वह कहेगा भूलकर मत पड़ना, इसमें मुश्किल हो जायेगी, इसमें तो सब गड़बड़ हो जायेगी, साधना सब भ्रष्ट हो जायेगी। वह निंदक बहुत जोर से कहेगा भीतर, क्योंकि वह आज का नहीं है। वह हमारे 'कलेक्टिव माइंड' का हिस्सा है, वह हमारे समूह-मन का हिस्सा है, वह कोई पाँच हजार वर्ष से हमारे भीतर बैठा है और उसकी वजह से जीवन एकदम विषाक्त हो गया

है। जीवन की कोई खुशी अंगीकृत नहीं रही, कोई गीत अंगीकृत नहीं रहा।' लाइफ निगेटिव है। हमारा तो दृष्टिकोण और 'लाइफ ऑफ फार्मेशन' 'रिवरेंस फॉर लाइफ' चाहिए, जीवन के प्रति आदर-सम्मान, जीवन के प्रति प्रेम, अनुग्रह का भाव चाहिए। धन्य हैं वे लोग जो जीवन के प्रति अनुग्रह से भरते हैं, क्योंकि जीवन में जो भी श्रेष्ठ है, सुन्दर है, शुभ है वह सभी उनको उपलब्ध हो जाता है।

हम सुबह के ध्यान के लिए बैठेंगे, तो दो-चार बातें समझ लें।

मेरे लिए तो ध्यान भी जीवन की स्वीकृति है, अंगीकार है। ये हवाएँ हैं, ये आयेंगी, जायेंगी। आवाजें है, पैदा होंगी, विलीन हो जायेंगी। सागर का गर्जन चलता रहेगा। कोई पक्षी बोलेगा। इस सबको परमात्मा का आशीर्वाद समझकर अंगीकार कर लेना है। इसे स्वीकार कर लेना है। अब तक ध्यान के नाम से जो भी सिखाया गया वह रेसिस्टेंस है, वह प्रतिरोध है। अब तक यही सिखलाया गया है कि कोई आवाज न सुनायी पड़े, चींटी काटे तो पता न चले। ये मर जाने की प्रक्रियाएँ हैं। आदमी मर जाता है, तब चींटी भी काटती है तो पता नहीं चलता। हवा चलती है तो पता नही चलता है। जिन्दा आदमी को तो पता चलेगा और जितना ज्यादा जिन्दा होगा उतना ज्यादा पता चलेगा, उतनी रिसेप्टीविटी बढ़ जायेगी उसकी, उतनी संवेदना बढ़ जायेगी। जितना शान्त होगा, उतना जीवन्त होगा। जरा-सी ध्वनि और उसके प्राणों में आन्दोलन होगा। जरा सी आवाज उसे सुनायी पड़ेगी। एक सुई गिर जायगी तो भी उसे सुनायी पड़ेगी। जीवन का लक्षण संवेदना है। मृत्यु का लक्षण संवेदना नही है। लेकिन अब तक हमको इस तरह की बातें ही सिखायी गयी हैं कि जैसे डेड हो जाओ, मुर्दे की तरह हो जाओ। नही, मैं आपको और भी जीवन्त देखना चाहता हूँ, इतना जीवन्त कि वृक्ष का एक छोटा-सा पत्ता भी हिले तो पता चले। अब तक रेसिस्टेंस, ध्यान का अर्थ बताया गया है प्रतिरोध। अपने को दबाओ, हटाओ, कुछ सुनायी न पड़े, कुछ ज्ञात न हो, सब तरफ से अपने को बन्द कर लो। मैं कह रहा हूँ ध्यान है एक ओपनिंग, द्वार का खोलना, बन्दी करना नहीं। खोल दें द्वार और जो भी आता है चुपचाप देखते रहें। बस, एक साक्षी रह जाये, एक विटनेस रह जाये। जितना शांत होंगे, जितना साक्षी होंगे उतना ही पायेंगे कि जीवन के द्वार टूटते जा रहे हैं। एक मेल होता जा रहा है, सब जुड़ता जा रहा है। धीरे-धीरे पता चलेगा, सारी परिधि टूटती जा रही है। सारी सीमाएँ गिरती जा रही हैं और असीम के साथ मिलन होता

चला जा रहा है। असीम के साथ मिलना है समाधि, और असीम की तरफ बढ़ने के प्रयास का नाम है ध्यान। लेकिन असीम की तरफ वही बढ़ सकता है जो सारा विरोध छोड़ दे, क्योंकि विरोध सीमा बनाता है। रेसिस्टेंस सीमा बनाता है। कोई रेसिस्टेंस नहीं। सब स्वीकार। एक स्वीकृति भर मन में रह जाये, टोटल एक्सेप्टेंस मन में रह जाये। मन में सब स्वीकृत है और मैं मौन बैठा हुआ हूँ, देख रहा हूँ, जान रहा हूँ, केवल साक्षी हूँ। ●

प्रतिबद्ध क्षणों की आवाज

पंचम प्रवचन

जीवन-देवता के प्रति समर्पण का भाव, स्वीकार, सम्मान और श्रद्धा की मनस्थिति के सम्बन्ध में सुबह थोड़ी-सी बात मैंने कही। उस सम्बन्ध में बहुत से प्रश्न आये हैं। उन पर अभी बात करनी है।

जीवन सदा से अस्वीकृत रहा है। जीवन की श्रद्धा और सम्मान के लिए न तो कभी कोई पुकार दी गयी है, न कभी कोई आह्वान किया गया है। जीवन को छोड़ देना, जीवन से पलायन करने को, जीवन को तोड़ देने और नष्ट कर देने की बहुत-बहुत रूपों में चेष्टाएँ जरूर की गयी हैं। या तो वे लोग पृथ्वी पर प्रभावी रहे हैं जिन्होंने दूसरों के जीवन को नष्ट करने की कोशिश की है—राजनीतिज्ञ, सेनापति, युद्धखोर या जो लोग दूसरों का जीवन नष्ट करने में नहीं लगे हैं। तो वे दूसरी प्रक्रिया में लग गये हैं। वे अपने ही जीवन को नष्ट करने का प्रयास करते रहे हैं—तथाकथित धार्मिक, साधु-संन्यासी। दो प्रकार की हिंसा चलती रही है। या तो दूसरे का जीवन नष्ट करो या अपना जीवन नष्ट करो। या तो दूसरे को समाप्त करो या स्वयं को समाप्त करो। जीवन की दोनों ही अर्थों में हत्या होती रही है। जीवन का परिपूर्ण सम्मान आज तक भी मनुष्य के मन में प्रतिष्ठित नहीं हो पाया। स्वभावत: जब मैं कहूँ कि जीवन ही देवता है, जीवन ही प्रभु है तो अनेक प्रश्न उठने स्वाभाविक हैं।

एक मित्र ने पूछा है कि अगर जीवन ही प्रभु है तो फिर जीवन से छुटकारा और आवागमन से मुक्ति और मोक्ष इस सबका क्या होगा ? जीवन को बन्धन कहा गया है और मैं जीवन को ही प्रभु कह रहा हूँ ?

निश्चित ही आज तक जीवन को बन्धन ही कहा गया है। लेकिन जीवन बन्धन नहीं है। जो लोग जीवन जीने की कला नहीं जानते, उनके लिए जीवन जरूर बन्धन हो जाता है।

एक अजनबी देश में कुछ मित्र यात्रा कर रहे थे। वे भूखे थे और फलों की एक दूकान पर रुके। जो फल वहाँ बिक रहे थे, वे अपरिचित थे। अजनबी देश था, नहीं जानते थे क्या है वह फल। नारियल बिकता था। वे लोग जिस देश से आये थे वहाँ नारियल नहीं होते थे। उन्होंने पूछा—यह क्या है ?

दूकानदार ने कहा—बहुत स्वादिष्ट, बहुत मधुर, बहुत शक्तिवर्धक फल है। उन्होंने उन फलों को खरीद लिया। दूकानदार ने प्रशंसा में यह भी कहा कि बड़े-बड़े शाहंशाह भी, बड़े-बड़े सम्राट् भी उसकी ही दूकान से इन फलों को खरीदते हैं। फिर वे फलों को लेकर आगे बढ़ गये। गाँव के बाहर वे रुके और

उन्होंने फलों को खाने की चेष्टा की, लेकिन नारियल से परिचित नहीं थे। वे जिन फलों से परिचित थे उन पर नारियल जैसी कड़ी खोल नहीं होती थी। उन्होंने नारियल को ऊपर से ही खाना शुरू किया। बहुत परेशान हो गये। तिक्त हो गया मुँह। कहीं कोई स्वाद न दिखायी पड़ा। दाँत गँपाना भी कठिन था, मुश्किल था। फिर उन्होंने एक एक करके वे फल फेंक दिये और कहा—बड़े मूढ़ हैं इस देश के शाहंशाह और सम्राट्, जो इन फलों को खाते हैं। इन फलों में न कोई स्वाद है, न कोई रस है, न कोई अर्थ प्रतीत होता है। कैसे पागल हैं लोग !

उन फलों को फेंककर वे भूखे ही आगे बढ़ गये और अपने देश में जाकर उन्होंने प्रचार किया कि हम मूर्खों के एक देश से आ रहे हैं। वहाँ वे लोग पत्थरों जैसे फलों को खाते हैं और उनकी प्रशंसा करते हैं।

उन बेचारों को पता भी नहीं था कि फल वे पत्थर जैसे न थे, लेकिन खाने की विधि ही उन्हें ज्ञात न थी।

जीवन के फल पर भी जो खाने की विधि से, जीवन को भोगने की विधि से, जीवन के रस के मार्ग से, जीवन के छन्द को अनुभव करने के मार्ग से अपरिचित है, उन्हें जीवन लोहे की जंजीर जैसा प्रतीत होता हो तो आश्चर्य नहीं। जीवन जंजीर नहीं है और जीवन से भिन्न कोई मोक्ष नहीं है। जीवन को ही जो उसकी परिपूर्णता में जान लेने में समर्थ होता है, वह जीवन के मध्य, जीवन के बीच, मोक्ष को उपलब्ध हो जाता है। यह भी नहीं हो सकता कि जीवन और मोक्ष में कोई विरोध हो। यह हो भी नहीं सकता कि जगत् में कोई दो विरोधी सत्ताएँ हों। यह हो भी नहीं सकता कि प्रभु और संसार में बुनियादी शत्रुता हो। कोई गहरी मैत्री का सेतु है। कोई एक ही सब संसार में, मोक्ष में प्रकट हो रहा है—देह में, आत्मा में, रूप में, अरूप में। लेकिन हमारी असफलता, जीवन के फल को चखने की हमारी सीमा हमारे लिए बंधन बनती जा रही है। जीवन को जीने की कला ही हमने नहीं सीखी। बल्कि कला न जानने से जब जीवन तिक्त और बेस्वाद लगा तो हमने जीवन को ही तोड़ देने की कोशिश की, अपने को बदलने की नहीं। हमने उस पागल की तरह व्यवहार किया है, शायद उस पागल के सम्बन्ध में आपने सुना हो। न सुना हो तो मैं कहूँ और शायद आप पहचान भी लें कि वह पागल कौन है।

एक आदमी था। वह अपने को बहुत ही सुन्दर समझता था कि पृथ्वी पर उसके जैसा सुन्दर और कोई नहीं है। यही पागलपन के लक्षण हैं। लेकिन वह आईने के सामने जाने से डरता था और जब कोई उसके सामने आईना ले जाता

तो तत्क्षण आईने को तोड़ देता था। लोग पूछते, क्यों? तो वह कहता कि मैं इतना सुन्दर हूँ और आईना कुछ ऐसी गड़बड़ करता है कि मुझे कुरूप बना देता है। आईना मुझे कुरूप बनाने की कोशिश करता है। मैं किसी आईने को बरदाश्त नहीं करूँगा, मैं सब आईने तोड़ दूँगा। मैं सुन्दर हूँ, आईने मुझे कुरूप करते हैं। वह कभी आईने में नहीं देखता था, लेकिन जब कोई आईना ले आता तो तत्क्षण तोड़ देता।

मनुष्य भी उस पागल की तरह व्यवहार करता है। नहीं सोचता कि आईना वही दिखाता है जैसा वह है। आईना वही बतलाता है जो मैं हूँ। आईने को कोई प्रयोजन नहीं कि वह मुझे कुरूप करे। आईने को मेरा पता भी नहीं। मैं जैसा हूँ, आईना वैसा बता देता है। लेकिन बजाय देखने के कि मैं कुरूप हूँ, आईने को ही तोड़ने में लग जाता हूँ। संसार को छोड़कर भाग जानेवाले लोग आईने को तोड़नेवाले लोग हैं। अगर संसार दुःखद मालूम पड़ता है, तो स्मरण रखना कि संसार एक दर्पण से ज्यादा नहीं। वही दिखायी पड़ता है जो हम हैं। अगर दुख हमारे जीवन की व्यवस्था है तो संसार में दुख दिखायी पड़ेगा। अगर चिन्ता हमारे चित्त की व्यवस्था है तो संसार में चिन्ता झलकेगी। अगर काँटे हमने इकट्ठे कर रखे हैं तो संसार में काँटे ही दिखायी पड़ेंगे। संसार हमारी प्रतिध्वनि है। जो हमारे भीतर है वही प्रतिध्वनित हो उठता है, वही रीइको हो उठता है। लेकिन नहीं, यह देखने को हम राजी नहीं हैं। हम कहते हैं—'संसार बन्धन है।' हम कहते हैं—'संसार दुख है।' हम कहते हैं, 'संसार असार है, छोड़ दें, तोड़ दें, मुक्त हो जायँ, बाहर हो जायँ।' किससे बाहर होंगे?

दर्पण को तोड़कर कोई मुक्त होता है? प्रतिध्वनियों को बन्द कर कोई मुक्त होता है? मुक्त होना है तो स्वयं को बदलना पड़ता है, न कि जीवन को तोड़ना है। मुक्त होना हो तो स्वयं को आमूल बदलना पड़ता है और स्वयं को जो आमूल बदलने को तैयार हो जाता है, वह पाता है कि जीवन एक धन्यता है, एक कृतार्थता है। वह परमात्मा के प्रति धन्यवाद से भर उठता है, इतना सुन्दर है जीवन, इतना अद्भुत है, इतना रसपूर्ण, इतना छन्द से भरा, इतने गीतों से, इतने संगीतों से। लेकिन उस सबको देखने की क्षमता और पात्रता चाहिए। उस सबको देखनेवाली आँखें, सुननेवाले कान, स्पर्श करनेवाले हाथ चाहिए।

और भी कुछ मित्रों ने पूछा है कि मैंने सुबह जीवन की कला पर कुछ कहा। मैं और ठीक से कहूँ कि जीवन की कला से मेरा क्या प्रयोजन है।

जीवन की कला से मेरा यही प्रयोजन है कि हमारी संवेदनशीलता, हमारी पात्रता, हमारी ग्राहकता, हमारी रिसेप्टीविटी इतनी विकसित हो कि जीवन में

जो सुन्दर है, सत्य है, शिव है, वह सब हमारे हृदय तक पहुँच सके। उसे सबको हम अनुभव कर सकें। लेकिन हम जीवन के साथ जो व्यवहार करते हैं, उससे हमारे हृदय का दर्पण न तो निखरता है, न निर्मल होता है, न साफ होता है। बल्कि गन्दा होता है, और धूल से भर जाता है। उसमें प्रतिबिम्ब बनाना और भी कठिन हो जाता है। जिस भाँति जीवन को हमने बनाया है—सारी संस्कृति, सारा समाज मनुष्य के व्यक्तित्व को ठीक दिशा में नहीं ले जाता है। बचपन से ही गलत दिशा शुरू हो जाती है और यह गलत दिशा जीवन भर जीवन से ही परिचित होने में बाधा डालती रहती है। उस सम्बन्ध में दो-चार बातें समझ लेनी होंगी। उस सम्बन्ध में पूछे गये प्रश्नों का भी हल हो सकेगा।

पहली बात जीवन को अनुभव करने के लिए एक प्रामाणिक चित्त, एक आथेंटिक माइण्ड चाहिए। हमारा सारा चित्त औपचारिक है, फार्मल है, प्रामाणिक नहीं है। न तो हमने प्रामाणिक रूप से कभी प्रेम किया है, न प्रामाणिक रूप से कभी क्रोध किया है, न प्रामाणिक रूप से कभी हमने घृणा की है, न प्रामाणिक रूप से हमने कभी क्षमा की है। हमारे चित्त के सारे आवर्तन, हमारे चित्त के सारे रूप औपचारिक हैं, झूठे हैं, मिथ्या हैं। अब मिथ्या चित्त को लेकर जीवन के सत्य को कोई कैसे जान सकता है? सत्य चित्त को लेकर ही जीवन के सत्य से सम्बन्धित हो सकते हैं। हमारा पूरा माइण्ड, हमारा पूरा चित्त, पूरा मन मिथ्या और औपचारिक है। इसे समझ लेना उपयोगी है।

सुबह ही आप अपने घर के बाहर आ गये हैं और कोई राह पर दिखायी पड़ गया है और आपने नमस्कार कर लिया है। और आप कहते हैं उससे मिलकर कि 'बड़ी खुशी हुई आपके दर्शन हो गये।' लेकिन मन में आप सोचते हैं कि 'इस दुष्ट का सुबह-सुबह चेहरा कहाँ से दिखायी पड़ गया।'

यह 'अनआथेंटिक' माइण्ड है, यह गैर-प्रामाणिक मन की मुस्कान है। चौबीस घंटे हम ऐसे दोहरे ढंग से जीते हैं, तो जीवन से कैसे सम्बन्ध होगा? फिर दोष देते हैं जीवन को। तनाव पैदा होता है दोहरेपन से। जीवन में कोई तनाव नहीं है। तनाव पैदा होता है मनुष्य के दोहरेपन से। हम दोहरे ढंग से जी रहे हैं। भीतर कुछ है, बाहर कुछ है। दोहरा ढंग भी होता है तो वह भी ठीक है। हम हजार ढंग से जी रहे हैं। एक ही साथ हजार बातें हमारे भीतर चल रही हैं। हमारे व्यक्तित्व में कोई प्रामाणिकता, कोई सचाई नहीं है। सारा व्यक्तित्व ही मिथ्या मालूम होता है, नाटकीय मालूम होता है।

लेकिन किसको धोखा दे रहे हैं आप? किसके सामने यह अभिनय चल रहा है? किसी और को धोखा नहीं होगा। इस धोखा देने में स्वयं को ही जानने से

वंचित रह जायेंगे, जीवन से सम्बन्धित होने से वंचित रह जायेंगे। सब तरह का धोखा है, जो आदमी दे रहा है। सबसे गहरा धोखा मन के तलों पर है, जहाँ हमारी कोई भी चीज सच नहीं रह गयी।

कभी आपने सच में ही किसीसे प्रेम किया है ? समझदार लोग कहते हैं प्रेम नासमझ करते हैं। समझदार लोग प्रेम की बातें करते हैं, अभिनय करते हैं, मगर प्रेम कभी नहीं करते हैं। व्यावहारिक लोग, प्रेक्टिकल लोग कभी प्रेम नहीं, सिर्फ प्रेम की बातें करते हैं। हमारे सारे भाव बातों तक सीमित हो गये हैं। कभी जीवन की कोई भी अनुभूति ऐसी तीव्रता से हमने नहीं पकड़ी है, जिसके लिए हम जी जायें, जिसके लिए हम मर जायें। कोई आथेंटिक, कोई प्रामाणिक भाव हमारे जीवन में नहीं होता है। क्रोध भी हम करते हैं तो पोज इम्पोटेंट। उस क्रोध में भी कोई बल नहीं होता है, कोई शक्ति नहीं होती। जो क्रोध भी नहीं कर सकता प्रामाणिक रूप से, वह क्षमा कैसे कर सकेगा ? क्षमा भी वही कर सकता है जो क्रोध करने में समर्थ है। मित्र भी वही हो सकता है जो शत्रु होने में समर्थ है। लेकिन न हम शत्रु हो सकते हैं, न मित्र हो सकते हैं। हम बिलकुल बीच में खड़े रहते हैं। हम बिलकुल त्रिशंकु हो गये हैं। हमारे जीवन की कोई भाव-दशा नहीं रह गयी है।

एक ग्रामीण युवक था। पुराने दिनों की बात है, क्योंकि अब तो दुनिया में ग्रामीण कोई भी नहीं रह गया है। ग्राम रह गये हैं, ग्रामीण कोई भी नहीं रह गया है। आदमी सब शहरी हैं। उसने विवाह किया। यह अमरीका की कोई दो ढाई सौ वर्ष पहले की किसी गाँव की घटना है। उसने विवाह किया और नववधू को लेकर अपनी घोड़ा-गाड़ी में सवार होकर गाँव की तरफ लौटा। रास्ते में घोड़ा एक जगह ठिठक गया, रुक गया। उसने बहुत कोशिश की, लेकिन नहीं चला। उसने घोड़े से कहा—दिस इज वन्स, यह एक बार हुआ।

उसकी पत्नी कुछ भी नहीं समझी कि घोड़े से क्या बात की जा रही है। फिर घोड़ा थोड़ी दूर चला और ठिठक गया। उस जवान ने कहा—दिस इस ट्वाइस, यह दो बार हो गयी बात।

उसकी पत्नी फिर भी चुप रही। घोड़ा तीसरी बारा ठिठका। उसने कहा—दिस इस थ्राइस।

उठा, बन्दूक उठाकर घोड़े को गोली मार दी। उसकी पत्नी तो हैरान रह गयी। उसने उसे जोर से धक्का मारा और कहा—यह क्या क्रूरता करते हो ?

उसने जवाब दिया—दिस इस वन्स। (यह पहली बार हुआ)।

उसकी पत्नी दंग रह गयी।

अकबर ने अपने संस्मरणों में लिखवाया है कि वह बात तो मुझे याद रह गयी। मैंने तो जिन्दा आदमी देखे थे। एक क्षण में, एक तीव्रता में, एक प्रामाणिक जीवन देखा था, एक क्षण वह चमक देखी थी जो आदमी की चमक है। लेकिन हम सबके जीवन से आदमी की चमक विलीन हो गयी है। न कभी वहाँ क्रोध ऐसा चमकता है कि बिजली की लौ पैदा हो जाये, न कभी प्रेम। वहाँ कोई चमक ही नहीं है। हम बिलकुल अपनी चमक के बिना, विद्युत् के बिना, बल के बिना लोप होते चले गये हैं।

जीवन से हमारा सम्बन्ध कैसे हो सकता है? जीवन से सम्बन्धित होने के लिए शास्त्रों का अध्ययन नहीं, मंदिरों की प्रार्थनाएँ नहीं, इन्टेंसिटी, तीव्रता का जीवन चाहिए। एक ही प्रार्थना है जीवन-देवता के मन्दिर में, वह है इन्टेंस लिविंग, वह है तीव्र जीवन, वह है उद्दाम जीवन, वह है बलशाली, शक्तिशाली जीवन, ऊर्जा से भरा जीवन। हम सब बिना ऊर्जा के जीते चले जाते हैं, चलते नहीं हैं रास्तों पर, जैसे धक्का खाते हैं।

मेरी दृष्टि में जीवन की कला की पहली शिक्षा जो हो सकती है, वह यह है कि हम जीवन को कितनी तीव्रता से ले सकते हैं। जैसे एक-एक क्षण ही हमारा जीवन दाव पर लगा हो। कौन जानता है, एक क्षण के बाद जीवन आये न आये, श्वास आये न आये। सचाई यही है कि एक-एक क्षण जीवन दाव पर लगा हुआ है। अभी आप यहाँ बैठे हैं इतनी सुस्ती से, इतने आराम से। अगर आपको खबर की जाये कि बस घंटा भर और है आपके जीवन के लिए, तो वह घंटा क्या होगा? या आपको कह दिया जाये, बस एक क्षण और है, यह अन्तिम क्षण है। उस क्षण में आप कैसे जीयेंगे? सचाई भी यही है कि एक आदमी को एक क्षण से ज्यादा जीवन मिला हुआ नहीं है। दूसरे क्षण का कोई भरोसा नहीं है। वह आये और न आये। जो क्षण मेरे हाथ में है वही मेरे हाथ में है। अगर उस क्षण को मैं अपनी पूरी शक्ति से नहीं जीता हूँ, तो मैं जीवन की कला कभी नहीं सीख पाऊँगा। मैं जो कर रहा हूँ उसे कौन जानता है कि दोबारा कर सकूँगा कि नहीं। अगर मैं किसीको प्रेम कर रहा हूँ तो कौन जानता है कि दोबारा यह प्रेम का क्षण आयेगा या नहीं। अगर मैं आकाश के तारे देख रहा हूँ तो कौन कह सकता है कि दोबारा ये तारे मुझे देखने को मिलेंगे या नहीं।

जीवन-कला का पहला सूत्र यही हो सकता है कि जो भी मैं कर रहा हूँ, जिस क्षण से भी मैं गुजर रहा हूँ, जो भी मैं हूँ वह मैं समग्रता से जीऊँ, पूर्णता से जीऊँ। वह मेरा टोटल, वह मेरे समग्र जीवन का केन्द्रित अणु बन जाये, क्योंकि

उसके बाहर का कुछ भी पता नहीं है। आज रात जब आप सोयें तो क्य
पता है कि कल सुबह आप उठेंगे। तो फिर आज रात पूरी तरह सो लें, क्योंवि
दोबारा सोना आयेगा कि नहीं, नहीं कहा जा सकता। अगर मित्र को विद
देने गये हों तो यह विदाई इतनी सम्पूर्ण हो, इतनी परिपूर्ण, कि कौन जाने यह
मित्र दोबारा मिलेगा कि नहीं। लेकिन हम ऐसे ढीले-ढीले जीते हैं कि उस
हमारे जीवन के क्षणों की तीव्रता का कोई बोध ही नहीं है, कोई स्पष्टता ह
नहीं है। हम ऐसे जीते हैं जैसे हमेशा जीने को हैं। हम जीते हैं सुस्ती र
और आहिस्ता से। जैसे जीवन एक लेजीनेस है, एक आलस्य है, एक प्रमा
है। नहीं, जीवन एक तीव्रता है और जो जितनी तीव्रता से जीता है वह जीव
के मन्दिर में उतना ही गहरा प्रविष्ट हो जाता है। लेकिन तीव्रता तो सिखा
नहीं जाती। न हम रोते हैं कभी तीव्रता से कि हमारे प्राण आँसू बन जायें
तब वे आंसू भी अद्भुत हो जाते हैं जो पूरी तरह प्राणों से आते हैं। तब
आँसुओं का मोल बहुत ज्यादा है—किन्हीं भी हीरे-जवाहरातों, किन्हीं
मोतियों से भी ज्यादा। वह आँसू जो पूरे प्राणों की झलक लेकर आते
एक बार भी जब वैसा आदमी रो लेता है, तो रोने के द्वार से ही वह जीव
सम्बन्धित हो जाता है। या कि जब हम मुसकरायें तो वह हमारे पूरे प्राणों
मुसकराहट हो। तो वह मुसकराहट भी हमें उसी तीव्रता में ले जाती
जीवन का प्रत्येक अनुभव तीव्रता बने, इन्टेंसिटी ले। लेकिन क्या हमारे जी
में ऐसी तीव्रता है? नहीं है। तो फिर जीवन एक बन्धन मालूम होगा। इस
जीवन का कसूर नहीं। वह आपके शिथिल, अतीव्र, ढीले-ढाले सूत्र और प्रमा
जीवन का लक्षण है। वह आप जीना नहीं सीखे इस बात का सबूत है।

जीना मेरी दृष्टि में, या कभी भी जब जीवन को आप जानेंगे तो आपक
दृष्टि में भी प्रति पल एक दाव है, एक जुआ है, उस पर सब कुछ लगा देन
है। जो सब कुछ लगा देता है वही सब कुछ को जान भी पाता है। हम कुछ
लगाते ही नहीं। हमारा सब झूठा, सब शाब्दिक है। न हमने कभी श्रद्धा की
है पूरे प्राणों से, न कभी प्रेम किया है, न कभी हँसे हैं, न कभी रोये हैं।

विजयनगर के राज्य में एक बहुत बड़ा संगीतज्ञ हुआ। उसकी सत्तरवीं
वर्षगाँठ राजधानी में मनायी जा रही थी, राजदरबार में। दूर-दूर से उसे प्रेम
करनेवाले और श्रद्धा करनेवाले लोग इकट्ठा हुए थे। वे अनेकानेक भेंट लाये थे,
बहुमूल्य से बहुमूल्य। राजा आये थे, धनपति आये थे, बड़े कुशल संगीतज्ञ
आये थे। दरबार भेंटों से भर गया था और द्वार पर एक भिखारी ने आकर
खबर दी कि मैं भी कुछ भेंट लाया हूँ। मुझे भी भीतर प्रवेश मिल जाय। लेकिन

कपड़े उसके फटे थे, दीन-दरिद्र था। द्वारपाल लौटने लगा। वह रोने लगा और उसने कहा, 'क्या करते हैं, मैं भी कुछ भेंट लाया हूँ, मुझे भीतर तो जाने दें।'

लेकिन भिखमंगे को कौन भीतर आने दे। लेकिन उसकी आवाज, उसका रोना, उसका चिल्लाना भीतर तक पहुँच गया। संगीतज्ञ को खबर मिली। उसने कहा, 'जरूर आ जाने दें, जो भी वह लाया हो, भिखमंगा ही सही। भेंट तो प्रेम की होती है।'

वह भिखमंगा ज्यादा उम्र का नहीं था, मुश्किल से चालीस वर्ष उसकी उम्र थी। हजारों लोग राजदरबार में हैं। वह भीतर लाया गया। वह संगीतज्ञ के चरणों में झुका और उसने कहा, हे परमात्मा, मेरी शेष उम्र संगीतज्ञ को दे दो।' और उसी क्षण उसके प्राण निकल गये। यह ऐतिहासिक घटना है, कोई कहानी नहीं। हजारों लोग खड़े रह गये दंग। ऐसी भेंट न तो कभी देखी गयी, न कभी सुनी गयी थी। लेकिन पूर्णता के क्षणों में ही ऐसी सम्भावना घटित हो सकती है। फिर पूरे प्राण से जो भी चाहता है वह अगर घटित हो जाय तो कोई चमत्कार नहीं। पूरे प्राणों से उठी प्रार्थना उठने के पहले पूरी हो जाती है और पूरे प्राणों से उठी आकांक्षा शब्द बनने के पहले सत्य हो जाती है और पूरे प्राणों से चाहे गये स्वप्न रूप लेने के पहले ही यथार्थ हो जाते हैं। लेकिन पूरे प्राणों से न हमने कभी कुछ चाहा है, न पूरे प्राणों से हमने जीने की कला सीखी है, इसलिए जीवन एक बन्धन मालूम होता है। पूरे प्राणों से जो जीता है वह निरन्तर स्वतन्त्रता में जीता है, 'फ्रीडम' में जीता है। प्रति पल वह मोक्ष में जीता है, इसलिए कोई मोक्ष स्वर्ग में नहीं है, कोई मोक्ष आकाश में नहीं है, वह है जीवन की परिपूर्णता से जीने की कला में।

एक महाकवि मरणशैय्या पर था। एक मित्र ने कहा, 'अब अन्तिम क्षण आ गया, जीवन की संध्या आ गयी। अब तुम प्रार्थना करो प्रभु से कि जीवन-मरण से छुटकारा दिला दे, आवागमन से मुक्त कर दे।'

महाकवि ने आँखें खोल लीं जो बन्द थीं। वे हँसने लगे। अपने मित्रों से बोले, 'परमात्मा ने जो जीवन मुझे दिया था वह इतना धन्य हुआ, मैं उसे पाकर इतना कृतार्थ हुआ कि मैं किस मुँह से कहूँ कि मुझे जीवन से छुटकारा दिला दो? एक ही प्रार्थना अंतिम क्षण में मेरे हृदय में होगी कि अगर मुझमें जरा भी पात्रता हो तो हे प्रभु, मुझे बार-बार अपनी दुनिया में वापस भेज देना। तेरी दुनिया बहुत सुन्दर थी और अगर कहीं कोई कुरूपता मुझे दिखी होगी तो वह मेरे देखने का दोष रहा होगा, वह मेरी भूल रही होगी और तेरी दुनिया में बहुत फूल थे और काँटे गड़ गये होंगे तो मेरी कोई गलती नहीं होती। अगली

बार जाऊं तो और समर्थ होकर आऊं, ताकि तेरे जीवन के आनन्द को और भी अनुभव कर सकूं।'

गांधी ने जीवन के अन्तिम दिनों में एक अद्भुत प्रयोग किया था। शायद आपके ख्याल में न हो, क्योंकि गांधी के शिष्यों ने उसे छिपाने की पूरी तरह कोशिश की। उस प्रयोग की चर्चा पूरे मुल्क में न हो सकी। गांधी ने जीवन के अन्तिम दिनों में एक छोटा-सा प्रयोग किया था। वह शायद उनके जीवन का सबसे महत्त्वपूर्ण प्रयोग था। वे एक नग्न युवती को लेकर रात सोने लगे थे, ताकि यह पूरा का पूरा अनुभव कर सकें कि उनके मन में कहीं अब भी कोई वासना की रूपरेखा है, कहीं कोई अब भी शरीर का आकर्षण शेष तो नहीं रह गया है। प्राण जब पूरे के पूरे प्रभु की तरफ बहने लगे हों तो शरीर की तरफ बहने से मन में कोई भाव शेष नहीं रह जाता है। इसका परीक्षण कर लें, पहचान लें, खोजबीन कर लें। लेकिन इसके पहले कि प्रयोग करें, उन्होंने कुछ निकटतम मित्रों को पत्र लिखे थे और उनसे पूछा कि मैं यह प्रयोग करने को हूं। इसके पहले कि मैं प्रयोग करूं, तुमसे पूछ लेना चाहता हूं कि तुम राजी हो, सम्मत हो, तुम्हारा कोई एतराज, तुम्हारा कोई विरोध तो नहीं। जो पत्र लिखे थे उनमें से अधिकतम के जो उत्तर आये उसकी इबारत करीब करीब ऐसी थी कि आप तो बहुत बड़े महात्मा हैं। आप जो भी करते हैं ठीक करते हैं, लेकिन इस प्रयोग को न करें तो बड़ी कृपा होगी। इससे बड़ी बदनामी हो जायेगी। इससे यह होगा, इससे वह होगा। सभीका रुख यही था कि आप तो बहुत बड़े महात्मा हैं, लेकिन......वह 'लेकिन' सबके पीछे आ जाता था। गांधी पढ़ते और पत्र को एक तरफ रखते थे और कहते, जहां लेकिन आ गया वहां पहले कही गयी सारी बात झूठी हो गयी, मिथ्या हो गयी। आप बड़े महात्मा हैं लेकिन......अब लेकिन की क्या जरूरत है बड़े महात्मा के साथ? अच्छा होता कहते कि आप छोटे आदमी हैं इसलिए वह कम से कम सच होता, ईमानदारी का होता, ऑथेन्टिक होता, प्रामाणिक होता। लेकिन उन पत्रों में एक पत्र जरूर था। उसे गांधी हाथ में उठाकर खुशी के आंसू से भर गये। वह जे० बी० कृपलानी का था। उन्होंने लिखा था कि क्या आप मुझसे पूछते हैं? मैं तो हैरान हो गया। अगर मैं अपनी आंखों से आपको व्यभिचार करते भी देख लूं, तो पहला शक मुझे अपनी आंखों पर होगा, आप पर नहीं। हां, पहला शक मुझे अपनी आंखों पर ही होगा, आप पर नहीं। और आप मुझसे पूछते हैं तो मैं हैरान हो गया हूं। मैं आपसे पूछता तो ठीक था।

ऐसे लोग, जीवन को इस भाँति देखनेवाले लोग। लेकिन हम अपनी आँखों पर शक नहीं करते। हम पूरे परमात्मा पर ही शक कर लेते हैं। हम कहते हैं यह जीवन ही बन्धन है। हम कहते हैं यह जीवन ही असार है, यह जीवन ही बुरा है और एक बार ख्याल नहीं आता कि कहीं मेरी आँख तो कुछ गलत नहीं देखती, कहीं मेरी आँख ही तो बुरी नहीं। धार्मिक व्यक्ति मैं उसको कहता हूँ, जिसे अपनी आँख पर शक आता है, अपने चित्त पर शक आता है, अपने होने के ढंग पर शक आता है, अपने ऊपर सन्देह आता है— लेकिन इस विराट् जीवन पर नहीं। वह आदमी धार्मिक है। वह आदमी रिलीजस है और वह आदमी जीवन की कला सीख सकता है। क्योंकि जिसे स्वयं पर सन्देह आता है, वह स्वयं को बदलने का कोई उपाय कर सकता है। और अगर जीवन पर सन्देह आता है तो एक ही उपाय है कि पीठ करो जीवन की ओर और भागो, पलायन करो, छोड़ो, निषेध करो, त्याग करो। धीरे-धीरे [illegible] मरने का उपाय करो, जीवन से हटो और मृत्यु की तरफ जाओ।

इसलिए जीवन-कला की पहली स्मरणीय बात यह है कि मैं कहीं गलत हूँ। अगर जीवन मुझे बन्धन मालूम होता है, दुख मालूम होता है, पीड़ा मालूम होता है तो मैं कहीं गलत हूँ। मेरे गलत होने की सबसे पहली भूमि है कि मैं औपचारिक हूँ, मैं फार्मल हूँ ऑथेन्टिक नहीं, प्रामाणिक नहीं, मेरा होना झूठा है। मेरे शब्द झूठे हैं, मेरे सारे काम झूठे हैं, मेरी आँखें झूठ देखती हैं, मेरा सब कुछ झूठ है। इस पर ध्यान देना बहुत जरूरी है कि मैंने कहीं झूठा व्यक्तित्व, कोई फाल्स पर्सनल्टी तो खड़ी नहीं कर ली? हम सबने खड़ी कर ली है। बचपन से ही जहर के बीज बोये जाते हैं, व्यक्तित्व झूठा हो जाता है। लेकिन जब होश आ जाय तभी व्यक्तित्व को सत्य बनाने की दिशा में कुछ किया जा सकता है। मैं आपसे कहूँगा कि एक एक पल को प्रामाणिक रूप से जीने की हिम्मत और साहस और कोशिश, स्मरणपूर्वक, 'माइंडफुली' एक एक क्षण को पूरी तीव्रता से जीने का प्रयास साधना का अनिवार्य अंग है। आप जब रोयें तो परिपूर्णता से, पूरे प्राणों से रोयें, हँसें तो पूरे प्राणों से हँसें। मैत्री तो पूरे प्राणों से। भोजन भी तो पूरे प्राणों से। स्मरण भी तो पूरे प्राणों से, सोयें भी, उठें भी तो पूरे प्राणों से। जो पल आ रहा है, वह दोबारा नहीं आयेगा। वह एक ही बार अनुभव से गुजरता है। उस रास्ते से दोबारा गुजरने की कोई सम्भावना नहीं है। वह पल फिर नहीं आयेगा, वह अवसर फिर नहीं आयेगा। तो जिसे एक बार गुजरना है वह पूरे होश से, पूरा जागा हुआ, पूरे प्राणों से गुजर जाये। मेरा टोटल व्यक्तित्व, मेरा समग्र व्यक्तित्व समाहित हो

जाय, संलग्न हो जाय, एकतान हो जाय। तो धीरे-धीरे आपको दिखायी पड़ना शुरू होगा कि जीवन के बन्धन गिरने लगे। बन्धन आपके शिथिल जीने में था। तीव्रता से जीते ही तत्क्षण बन्धन गिर जाते हैं। लेकिन प्रयोग करना पड़ेगा। साधना करनी पड़ेगी, उस दिशा में कुछ कदम उठाने पड़ेंगे, उस दिशा में कुछ स्मरणपूर्वक रोज-रोज, प्रति पल होश रखना पड़ेगा कि मैं कहीं झूठा जीना तो शुरू नहीं कर रहा हूँ। पति है वह अपनी पत्नी से रोज कहे जाता है कि 'मैं तुझे प्रेम करता हूँ'। और जब वह कहता है तब उसे पता भी नहीं है कि वह क्या कर रहा है। शब्द ऐसे कह रहा है जैसे किसी ग्रामोफोन रेकार्ड से निकलते हों, जिनमें न कोई प्राण है, न कोई अर्थ है। पत्नी भी जानती है। पत्नी भी कहे जा रही है कि 'हम तुम्हें प्रेम करते हैं। जान लगा देंगे। तुम्हारे बिना एक क्षण भी नहीं जी सकते।' उन शब्दों के पीछे प्राणों की कोई गवाही नहीं। ये शब्द झूठे हैं। मत कहें। चुप बैठे रहें, यह बेहतर है। इनको कहकर आप सारे व्यक्तित्व को जाल में कस रहे हैं अपने हाथ से। जिनके प्रति हमें कोई श्रद्धा नहीं वहाँ सिर झुकाये चले जा रहे हैं। जिन मन्दिरों में पत्थर दिखायी पड़ते हैं वहाँ हम पूजा किये चले जा रहे हैं। जिन शास्त्रों में किसी सत्य का कोई दर्शन नहीं हुआ, उन्हें हम सिर पर लिये बैठे हैं। सारा व्यक्तित्व झूठा है।

तो इस झूठे व्यक्तित्व से जीवन के सत्य की तरफ कैसे कोई मार्ग बने, कैसे कोई द्वार खुले, कैसे कोई कदम उठे? जिस मन्दिर में आप हाथ जोड़कर गये हैं, सच में हाथ आपके जुड़े थे? उस मन्दिर में किसी प्रभु का कभी कोई अनुभव हुआ था? नहीं, तो फिर क्यों गये उस मन्दिर में? किसने कहा था कि उन मूर्तियों के सामने खड़े हो जायें?

एक फकीर एक रात जापान के एक मन्दिर में ठहरा हुआ है। रात सर्द है, बहुत ठंड है। फकीर के पास कपड़े भी नहीं। मन्दिर के पुजारी ने दया करके उसे भीतर ठहरा लिया। आधी रात पुजारी की नींद खुली तो घबराकर देखा कि मन्दिर के बीच आंगन में आग जल रही है। फकीर आंच ताप रहा है। वह भागा हुआ गया और कहा, 'यह क्या कर रहे हो?'

भगवान् बुद्ध की तीन मूर्तियां थी लकड़ी की। उनमें से एक वह जलाकर आग ताप रहा था। पुरोहित ने कहा, 'पागल, यह क्या कर रहा है? भगवान् की मूर्ति जला रहा है? भगवान् को जला रहा है?'

वह फकीर पास में पड़ी हुई एक लकड़ी का टुकड़ा उठाकर जलती मूर्ति की राख में टटोलने लगा, कुरेदने लगा। उस पुरोहित ने पूछा, 'आप क्या कर रहे हैं अब? फकीर ने कहा, 'मैं भगवान् की अस्थियाँ खोज रहा हूँ।'

उस पुजारी ने सिर से हाथ ठोक लिया और कहा, 'मैं पागल को ठहराकर दिक्कत में पड़ गया। अब लकड़ी की मूर्ति में कहीं अस्थियाँ होती हैं ?'

फकीर हँसने लगा। उसने कहा, 'जब लकड़ी की मूर्ति में अस्थियाँ ही नहीं होतीं तो भगवान् कैसे होंगे ? तुम जाओ अभी रात बहुत बाकी है। और दो मूर्तियाँ और रखी हैं, वे भी उठा लाओ। तुम भी तापो। मैं भी तापता हूँ।'

रात ही उस फकीर को मन्दिर के बाहर निकाल दिया गया, उस सर्द रात में। क्योंकि लकड़ी की मूर्ति में भगवान् दिखायी पड़ता था और इस जीते-जागते भगवान् को सर्दी लगेगी बाहर, इसकी फिक्र नहीं की गयी। सुबह जब पुजारी उठा और मन्दिर के बाहर गया तो देखा कि सड़क के किनारे जो मील का पत्थर लगा है, उसके पास बैठकर वह फकीर हाथ जोड़े ध्यान कर रहा है। उसे फिर उतनी ही हैरानी हुई। उसके पास जाकर उसे हिलाया और कहा, 'पागल, यह क्या कर रहा है। पत्थर को हाथ जोड़कर प्रार्थना कर रहा है ?'

फकीर ने कहा, 'मुझे सभी जगह भगवान् ही दिखायी पड़ते हैं। रात मैंने इसीलिए मूर्ति जलायी थी कि मैं देखना चाहता था कि तुम्हें भगवान् कितने गहरे दिखायी पड़ते हैं। अस्थियों के लिए तुम भी राजी न हो सके। तुम्हारे ही तर्क से पता चला कि भगवान् तुम्हें बिलकुल दिखायी नहीं पड़ता था। वह मूर्ति झूठी थी तुम्हारे लिए। वे जुड़े हुए हाथ झूठे थे। वह पूजा झूठी थी।'

रामकृष्ण को दक्षिणेश्वर में पुजारी की जगह मिली थी। बीस रुपये महीने की नौकरी थी, लेकिन दो-चार आठ दिन में ही मुश्किल शुरू हो गयी। जो कमेटी थी मन्दिर की, वह परेशान हो गयी। कमेटी जुटी और कहा गया कि यह आदमी तो गड़बड़ मालूम होता है। (ठीक आदमी हमेशा गड़बड़ मालूम होते हैं।) बड़ी शिकायतें आ गयी हैं। चार ही दिन में पूजा बड़ी गड़बड़ चल रही है।

शिकायतें बड़ी साफ थीं और ठीक थीं। खबर आयी थी कि रामकृष्ण फलों को सूँघकर मूर्ति को चढ़ाते हैं, चख लेते हैं, फिर भगवान् को भोग लगाते हैं। सब गड़बड़ प्रारम्भ हो गया है। रामकृष्ण को बुलाया गया और पूछा गया कि सुना है कि तुम फूल पहले सूँघ लेते हो तब मूर्ति को चढ़ाते हो।

रामकृष्ण ने कहा कि मैं वैसे चढ़ा ही नहीं सकता। पता नहीं कि फूल में सुगन्ध हो या न हो।

पूछा गया, सुना है कि तुम पहले भोजन कर लेते हो फिर भगवान् को लगाते हो ?

उन्होंने जवाब दिया, मेरी माँ भी ऐसा ही करती थी। पहले चख लेती

थी, फिर मुझे देती थी। मैं बिना चखे नहीं दे सकता। पता नहीं, भोजन देने लायक बना भी हो या न बना हो।

यह आथेन्टिक, यह एक प्रामाणिक पूजा हो गयी। लेकिन हमारी सारी पूजा झूठी और बकवास और धोखा है। कुछ दिखायी नहीं पड़ता वहाँ। हाथ जोड़े खड़े हैं अंधेरे में। शब्द झूठे हैं, प्रार्थना झूठी है। प्रेम झूठा है। और फिर पूछते हैं कि जीवन बन्धन है? जीवन बन्धन नहीं, मिथ्या व्यक्तित्व बन्धन है। वह जो 'फाल्स पर्सनल्टी' है, वह जो हमने सब झूठा बन्धन कर रखा है। अतः मेरा अनुरोध है कि तोड़ें औपचारिकता को, छोड़ें अप्रामाणिकता को, जीवंत अनुभव को तीव्रता से जीयें। उसकी सच्चाई में जीना शुरू करें, फिर आप पायेंगे कि छोटे-छोटे काम पूजा हो गये। उठना-बैठना पूजा हो गयी। फिर आप पायेंगे कि किसीका हाथ में लेना पूजा हो गयी। फिर आप पायेंगे कि किसी की आँख में एक क्षण प्रेम से झांक लेना प्रार्थना हो गयी। फिर आपको दिखायी पड़ने लगेगा कि वह तो सब तरफ मौजूद होने लगा। उसका मन्दिर तो सब तरफ उठने लगा। फिर तो पत्थर में, कंकर में, पत्ते-पत्ते में, फूल-फूल में उसकी झलक आने लगेगी। फिर तो सब उसीके शब्द हो जाते हैं, लेकिन जो प्रामाणिक रूप से जीता है, वह प्रामाणिक रूप से जीवन के सत्य से सम्बन्धित हो जाता है। हम अप्रामाणिक रूप से जीते हैं, इसलिए जीवन से सम्बन्ध नहीं होता है।

अभी तो इतना ही। फिर दो-चार प्रश्न इस सम्बन्ध में और होंगे। कल उनकी बात करूँगा। फिर हम रात्रि के ध्यान के लिए बैठेंगे।

ध्यान के सम्बन्ध में भी, इसी सन्दर्भ में, यह समझ लेना जरूरी है कि वह प्रामाणिक है या अप्रामाणिक। वह हम अपने में पूरे प्राणों से बैठ रहे हैं या बस बैठ गये हैं, क्योंकि और सब लोग बैठ गये हैं। अगर इसी भाँति आप बैठ गये हैं, चूँकि और सब लोग बैठे हैं, इसलिए हम भी बैठे हैं। चूँकि शिविर में आये हैं इसलिए बैठे हैं। चूँकि अब आ ही गये हैं इसलिए बैठ ही जाना चाहिए। अगर इस तरह से बैठ गये हैं तो उस ध्यान में कहीं कोई गति न होगी। लेकिन पूरे प्राणों से, पूरे दाव लगाकर कौन जानता है कि ध्यान के बाद आप उठ पायें या न उठ पायें। कौन जानता है यह क्षण अन्तिम क्षण हो और कहीं यह क्षण हाथ से खो जाये तो हमेशा के लिए खो जाये। कौन कह सकता है? तो इस भांति कि जैसे हो सकता है, यह अन्तिम क्षण हो।

एक युवक संन्यासी एक आश्रम के पास पहुँचा था। उस आश्रम का नियम था कि जब भी कोई व्यक्ति आये तो पहले तीन परिक्रमा करे गुरु की, फिर सात

बार पैर छुए, फिर बैठकर जिज्ञासा करे। वह युवक पहुँचा। उसने जाकर कन्धे पकड़ लिये सीधे और कहा, 'मैं कुछ पूछने आया हूँ।'

गुरु ने कहा, 'कैसे बदतमीज हो, कैसे अशिष्ट हो ? तुम्हें पता नहीं कि पहले तीन परिक्रमा करो, सात बार चरणस्पर्श करो, फिर बैठो, फिर पूछो। ऐसे उत्तर नहीं दिये जाते।'

उस युवक ने कहा, 'तीन नहीं, मैं तीन सौ परिक्रमा करूँगा और सात बार नहीं सात सौ बार पैर छूऊँगा, लेकिन क्या आप विश्वास दिलाते हैं कि मैं तीन चक्कर लगा आऊँ और उसके बाद जिन्दा बचूँगा ? आप जिम्मा लेते हैं मेरे बचने का ? मेरा उत्तर पहले है, मेरा प्रश्न पहले है। मुझे पहले उत्तर मिल जाय, फिर फुर्सत से आपका चक्कर लगाऊँ, पैर छूऊँ।'

उस गुरु ने अपने और शिष्यों से कहा, 'यह पहली दफा एक आथेन्टिक, एक प्रामाणिक प्रश्न पूछनेवाला आदमी आ गया है। अब इसे उत्तर देने की भी जरूरत नहीं है। इसका प्रश्न ही काफी है। उत्तर तक पहुँचा देगा।'

ध्यान इतनी सम्पूर्णता से, समग्रता से हो तो इसी क्षण हो सकता है, अभी और यहीं, इसी क्षण हो सकता है, अगर पूरे प्राण इकट्ठे हो जायें।

स्वामी रामतीर्थ गणित के विद्यार्थी थे और उनकी हमेशा की एक आदत थी। परीक्षा में अगर बारह प्रश्न आते और लिखा होता कि कोई भी सात हल करें तो बारह ही हल करते और लिखते कि कोई भी सात जाँच लें। उतना विश्वास भी था कि सभी सही हैं। एम० ए० की गणित की अन्तिम परीक्षा दे रहे थे और साँझ सात बजे से एक प्रश्न हल करना शुरू किया। रात के तीन बज गये, कोई उत्तर नहीं,मिल रहा है। उनका सहपाठी कहने लगा, 'तुम पागल हो गये हो। सुबह करीब है और एक प्रश्न पर सारी रात खराब कर रहे हो। कौन कहता है कि यह प्रश्न आयेगा भी। दूसरे की भी फिक्र कर लो।'

रामतीर्थ ने उत्तर दिया, 'और अगर यह आ गया तो क्या आज पहली दफा अन्तिम परीक्षा में मुझे सारे प्रश्न हल नहीं करने पड़ेंगे ? पाँच ही करके आ जाऊँगा ? नहीं, नहीं, यह मुझे हल करना है। फिर परीक्षा का सवाल नहीं है। जो प्रश्न हल नहीं हो रहा है उसने मेरे पूरे प्राणों को चुनौती दे दी है। उसे तो हल करना ही पड़ेगा।'

साढ़े तीन बज गये, चार बज गये, दो ही घंटे बचे है सुबह होने में। पूरी रात खो गयी। वह प्रश्न हल नहीं होता। वह मित्र घबरा गया है और कह रहा है, 'क्या पागलपन कर रहे हो।'

तभी रामतीर्थ उठे हैं और जाकर उन्होंने अपनी पेटी से एक छुरा निकाल लिया। छुरे को टेबल पर रख लिया। घड़ी में १५ मिनट बाद का अलार्म

भर दिया और मित्र से कहा, 'भाई नमस्कार ! अगर १५ मिनट में यह सवाल हल नहीं होगा तो छुरा छाती के भीतर हो जायेगा।'

मित्र ने कहा, 'क्या बिलकुल ही पागल हुए जा रहे हो। इस सवाल से ऐसा क्या लेना-देना है ?'

लेकिन रामतीर्थ सुनने के बाहर हो गये थे। छुरा सामने रखा हुआ है नंगा और वह सवाल हल करने में लग गये। सर्द रात है। ठंडी हवा है। माथे से तीन मिनट के भीतर पसीना चूने लगा। सारे शरीर से पसीने की धाराएँ बहने लगीं। पाँच मिनट पूरे नहीं हो पाये हैं कि सवाल हल हो गया है। माथा पोंछा उन्होंने और अपने मित्र से कहा, 'सवाल हल हो गया है।'

मित्र ने कहा, 'यह तो तरकीब बड़ी अच्छी है। अगली बार जब कभी ऐसी दिक्कत मुझे होगी तो मैं भी छुरा रख लूँगा, मैं भी अलार्म भर दूँगा और किसको छुरा मारना है ? अलार्म बज भी जायेगा और नहीं हुआ तो हर्ज भी क्या है।'

तो रामतीर्थ ने कहा, 'तू समझता है कि यह कोई तरकीब हुई। यह तरकीब नहीं थी। किसीको धोखा नहीं दिया जा रहा था। यह तो निश्चित था कि १५ मिनट पूरे होते और छुरा छाती के भीतर हो जाता।'

जब ऐसी समग्रता से कोई व्यक्ति किसी प्रश्न के सामने खड़ा हो जाये तो प्रश्न की कोई हस्ती है, कोई ताकत है ? जब इतने प्राणों से पूरा का पूरा कोई दाव पर लगा दे तो किस चीज की ताकत है ? कौन सा प्रश्न है जो रुकेगा ? कौन सी उलझन है जो रुकेगी ? कौन सी अशान्ति है जो रुकेगी ? कौन सी बाधा है जो अड़ सकती है ? समग्रता से जीवन को दाव पर लगाने वाले लोगों के सामने न कभी कुछ आया है, न कभी कुछ आ सकता है। सब हट जाता है। सब द्वार खुल जाते हैं। सब ताले टूट जाते हैं। लेकिन समग्रता से जीने की कोई दृष्टि हमारे पास नहीं है। ध्यान भी केवल उनके लिए कुंजी हो सकती है जो ध्यान को पूरी समग्रता से एक दाव बना लेते हैं। सब कुछ लगा देते हैं—पूरी शक्ति, सारी ऊर्जा।

यह बात और मैं आपसे कहता हूँ कि ध्यान तो जीवन के समस्त खजाने की कुंजी है। लेकिन वह कुंजी उन्हींको उपलब्ध होती है जो उसे पाने के लिए पूरी तरह ध्यान को प्राप्त करते हैं, पूरी तरह प्रार्थना को, पूरे प्राणों को लगाने से आते हैं। आज ही हो सकता है। इसी वक्त हो सकता है। करने की भी जरूरत नहीं। बैठे-रहते भी हो सकता है।

समर्पण के मौन क्षण

समापन प्रवचन

पहले दिवस की चर्चा में जीवन के प्रति विस्मय-विमुग्ध भाव चाहिए, इस सम्बन्ध में थोड़ी-सी बात मैंने आपसे कही थी। दूसरे दिन की चर्चा में जीवन के प्रति रस-विभोर भाव चाहिए, इस सम्बन्ध में थोड़ी-सी बातें कही हैं और आज तीसरी चर्चा में जीवन के प्रति परम निमग्न मन चाहिए, इस सम्बन्ध में आपसे कुछ कहना है।

ज्ञान तीसरा सूत्र है। मनुष्य ज्ञान से जहाँ नहीं पहुँचता है, वहाँ प्रेम से पहुँच जाता है। लेकिन प्रेम का हमें कोई पता ही नहीं। प्रेम के नाम से जो कुछ हम जानते हैं, वे सब झूठे सिक्के हैं। झूठे सिक्के इतने ज्यादा प्रचलित हैं कि असली सिक्के को पहचानना ही कठिन हो गया है। अर्थ-शास्त्र का यह सर्वमान्य नियम है कि झूठे सिक्के सहज ही खरे सिक्कों को बाजार से बाहर कर देते हैं। प्रेम शब्द जितना मिस-अण्डरस्टुड है, जितना गलत समझा जाता है, उतना मनुष्य की भाषा में कोई दूसरा शब्द नहीं। प्रेम के सम्बन्ध में जो गलतसमझी है, उसका ही विराट् रूप इस जगत् के सारे उपद्रव, हिंसा, कलह, द्वन्द्व और संघर्ष हैं। इसलिए प्रेम की बात ठीक से समझ लेना जरूरी है।

हम जैसा जीवन जीते हैं, प्रत्येक को यह अनुभव होता होगा कि शायद जीवन के केन्द्र में प्रेम की आकांक्षा और प्रेम की प्यास और प्रेम की प्रार्थना है। जीवन का केन्द्र अगर खोजना हो, तो प्रेम के अतिरिक्त और कोई केन्द्र नहीं मिल सकता। समस्त जीवन के केन्द्र में एक ही प्यास है, एक ही प्रार्थना है, एक ही अभीप्सा है और वह अभीप्सा प्रेम की है और वही अभीप्सा असफल हो जाती है तो जीवन व्यर्थ दिखायी पड़ने लगे, अर्थहीन, कुंठित मालूम पड़े, बोझिल मालूम पड़े, चिंतामग्न मालूम पड़े तो कोई आश्चर्य नहीं है। जीवन की केन्द्रीय प्यास ही सफल नहीं हो पाती है। न तो हम प्रेम दे पाते हैं और न उपलब्ध कर पाते हैं। और प्रेम जब असफल रह जाता है, प्रेम का बीज जब अंकुरित नहीं हो पाता है तब सारा जीवन व्यर्थ-व्यर्थ सा, अंधकारपूर्ण, असार-असार मालूम पड़ने लगता है। जीवन की असारता प्रेम की विफलता का फल है। जब प्रेम सफल होता है, जीवन सार बन जाता है। प्रेम विफल होता है तो जीवन प्रयोजन-हीन मालूम होने लगता है। प्रेम सफल होता है तो जीवन एक सार्थक कृतार्थता और धन्यता में परिणत हो जाता है। लेकिन यह प्रेम की नेम की पागल प्यास क्या है ? कौन सी बात है जो अभीप्सा है क्या ? यह

जहाँ एकता खोजी जाती है, वहीं-वहीं असफल हो जाते हैं। शायद जिन मार्गों से हम एकता खोजते हैं, वे मार्ग ही अलग करनेवाले मार्ग हैं, एक करनेवाले मार्ग नहीं। इसलिए प्रेम के नाम से झूठे सिक्के प्रचलित हो गये हैं।

मनुष्य जो एकता खोजता है, वह शरीर के तल पर खोजता है। लेकिन शायद आपको पता नहीं, पदार्थ के तल पर जगत् में कोई भी एकता सम्भव नहीं है। शरीर के तल पर कोई भी एकता सम्भव नहीं है। पदार्थ अनिवार्य रूप से एटॉमिक है, आणविक है और एक-एक अणु अलग-अलग है। दो अणु पास तो हो सकते हैं, लेकिन एकमेक नहीं हो सकते। दो अणुओं के बीच अनिवार्य रूप से जगह गेप रह जायगी, फासला, डिस्टेंस गेप रह जायगा। पदार्थ की सत्ता एटॉमिक है, आणविक है। प्रत्येक अणु दूसरे अणु से अलग है। हम लाख उपाय करें तो भी दो अणु एक नहीं हो सकते। उनके बीच में फासला है, उनके बीच में दूरी गेप रह ही जायगी। यह साथ हम कितने ही निकट ले आयें, यह साथ हमें जुड़े हुए मालूम पड़ते हैं, लेकिन यह फिर भी दूर हैं। इनके जोड़ में भी फासला है। इन दोनों के साथ में बीच में दूरी है, वह दूरी समाप्त नहीं हो सकती। प्रेम में हम किसीको हृदय से लगा लेते हैं। दो देह पास आ जाते हैं, लेकिन दूरी बरकरार रहती है, दूरी मौजूद रह जाती है। इसलिए किसी को हृदय से भी लगाकर पता चलता है कि हम अलग-अलग हैं, पास नहीं हो पाये हैं, एक नहीं हो पाये हैं। शरीर को निकट लेने पर भी वह जो एक होने की कामना थी, अतृप्त रह जाती है। इसलिए शरीर के तल पर किये गये सारे प्रेम असफल हो जाते हैं, तो आश्चर्य नहीं। प्रेमी पाता है कि असफल हो गये। जिसके साथ एक होना चाहता था, वह पास तो आ गया; लेकिन एक नहीं हो पाये। लेकिन उसे यह नहीं दिखायी पड़ता कि यह शरीर की सीमा है। शरीर के तल पर एक नहीं हुआ जा सकता, पदार्थ के तल पर एक नहीं हुआ जा सकता। वह स्वभाव है पदार्थ का कि वहाँ पार्थक्य होगा, दूरी होगी, फासला होगा, लेकिन प्रेमी को यह नहीं दिखायी पड़ता। उसे तो यह दिखायी पड़ता है कि शायद जिसे मैंने प्रेम किया है वह मुझे ठीक से प्रेम नहीं कर पा रहा है, इसलिए दूरी रह गयी। शरीर के तल पर एकता खोजना नासमझी है, यह उसे नहीं दिखायी पड़ता। लेकिन दूसरा प्रेमी दूसरी तरफ जो खड़ा है, जिससे उसने प्रेम की आकांक्षा की थी वह शायद प्रेम नहीं रहा है, इसलिए एकता उपलब्ध नहीं हो रही है। उसका क्रोध प्रेमी होता है, लेकिन दिशा ही गलत है प्रेम की, यह ख्याल नहीं आता, दुनिया भर में प्रेमी एक-दूसरे पर क्रोध करते हुए दिखायी पड़ते हैं।

एक-दूसरे पर क्रुद्ध दिखायी पड़ते हैं। सारे जगत् में प्रेमी एक-दूसरे के ऊपर क्रोध से भरे हुए हैं, क्योंकि वह आकांक्षा जो एक होने की थी वह विफल हो गयी है, असफल हो गयी है और सोच रहे हैं कि दूसरे के कारण असफल हो गयी है। प्रत्येक यही सोच रहा है कि दूसरे के कारण मैं असफल हो गया हूँ, इसलिए दूसरे पर क्रोध कर रहा है, लेकिन मार्ग ही गलत था।

प्रेम शरीर के तल पर नहीं खोजा जा सकता था, इसका स्मरण नहीं आता है। इस एकता की दौड़ में जिसे हम प्रेम करते हैं, उसे हम 'पजेस' करना चाहते हैं, उसके हम पूरी तरह मालिक हो जाना चाहते हैं। कहीं ऐसा न हो कि मालकियत कम रह जाय, पजेशन कम रह जाय। तो एकता कम न रह जाय, इसलिए प्रेमी एक-दूसरे के मालिक हो जाना चाहते हैं। मुट्ठी पूरी तरह कस लेना चाहते हैं। दीवाल पूरी तरह बना लेना चाहते हैं कि प्रेमी कहीं दूर न हो जाय, कहीं हट न जाय, कहीं दूसरे मार्ग पर न चला जाय, किसी और के प्रेम में संलग्न न हो जाय। तो प्रेमी एक-दूसरे को पजेस करना चाहते हैं। मालकियत करना चाहते हैं और उन्हें पता नहीं कि प्रेम कभी मालिक नहीं होता। जितनी मालकियत की कोशिश होती है, उतना फासला बड़ा होता चला जाता है, उतनी दूरी बढ़ती चली जाती है; क्योंकि प्रेम हिंसा नहीं है, मालकियत हिंसा है, मालकियत शत्रुता है। मालकियत किसीकी गर्दन को मुट्ठी में बाँध लेना है। मालकियत जंजीर है। लेकिन प्रेम भयभीत होता है कि कहीं मेरा फासला बड़ा न हो जाय, इसलिए निकट और निकट और सब तरफ से सुरक्षित कर लो ताकि प्रेम का फासला नष्ट हो जाय, दूरी नष्ट हो जाय। जितनी यह चेष्टा चलती है दूरी नष्ट करने की, दूरी उतनी बड़ी होती चली जाती है। विफलता साथ लगती है, दुःख साथ लगता है, चिंता साथ लगती है। फिर आदमी सोचता है कि यह प्रेम शायद इस व्यक्ति से पूरा नहीं हो पाया है, इसलिए दूसरे व्यक्ति को मैं खोजूँ। शायद यह व्यक्ति ही गलत है। तब आँखें दूसरे प्रेमी की खोज में भटकती हैं, लेकिन बुनियादी गलती वही की वही बनी रहती है। शरीर के तल पर एकता असम्भव है, यह ख्याल नहीं आता। यह शरीर और वह शरीर एक हो सकता नहीं है। सभी शरीर के तल पर एकता असम्भव है। आज तक मनुष्य जाति शरीर के तल पर एकता और प्रेम को खोजती रही है, इसलिए जगत् में प्रेम जैसी घटना घटित नहीं हो पायी।

जैसा मैंने आपसे कहा, यह जो पजेशन और मालकियत की चेष्टा चलती है, स्वाभाविक है, उसके आसपास ईर्ष्या का जन्म होगा। जहाँ मालकियत है, वहाँ ईर्ष्या है। जहाँ पजेशन है वहाँ जेलसी है, इसलिए प्रेम के फूल के आसपास

ईर्ष्या के बहुत कांटे, बहुत बागड़ खड़े हो जाते हैं और ईर्ष्या से आपके बीच का प्रेम कुम्हला जाता है, तो आश्चर्य नहीं। वह जन्म भी नहीं पाता है कि जलना शुरू हो जाता है। जन्म भी नहीं पाता है कि चिता पर सवारी शुरू हो जाती है। जैसे किसी बच्चे को पैदा होते ही हमने चिता पर रख दिया हो, ऐसे ही प्रेम ईर्ष्या की चिता पर रोज चढ़ जाता है। ईर्ष्या वहाँ पैदा होती है, जहाँ मालकियत है। जहाँ मैंने कहा 'मैं', 'मेरा', वहाँ डर है कि कहीं और मालिक न हो जाये। ईर्ष्या शुरू हो गयी, भय शुरू हो गया, घबराहट शुरू हो गयी, चिंता शुरू हो गयी, पहरेदारी शुरू हो गयी। और यह सारे के सारे मिलकर प्रेम की हत्या कर देते हैं। प्रेम को किसी पहरे की कोई जरूरत नहीं। प्रेम का, ईर्ष्या का कोई नाता नहीं। जहाँ ईर्ष्या है, वहाँ प्रेम सम्भव नहीं। जहाँ प्रेम है, वहाँ ईर्ष्या सम्भव नहीं है, लेकिन प्रेम है ही नहीं।

प्रेम के किनारे जाकर आदमी की नौका टूट जाती है, जो नौका बननी चाहिए थी। जिसकी हम यात्रा करते हैं, वह टूट जाती है; क्योंकि हमने प्रेम को बिलकुल ही गलत प्रारम्भ से शुरू किया है। पहली बात आपसे यह कहना चाहता हूँ कि पदार्थ के तल पर कोई प्रेम सम्भव नहीं है। वह इम्पासीबिलिटी है। वह मेरी और आपकी असफलता नहीं है, वह मनुष्य जाति, जीवन के लिए, असम्भावना है। पदार्थ के तल पर कोई एकता उपलब्ध नहीं हो सकती। जब यह एकता उपलब्ध नहीं होती, सब तरफ चिंता और विफलता दिखायी पड़ती है, तो कुछ शिक्षक यह कहने लगते हैं कि यह प्रेम ही गलत है, यह प्रेम की बात ही गलत है, प्रेम का विचार ही गलत है। छोड़ो प्रेम के भाव को, उदासीन हो जाओ, जीवन को उदासी से भर लो, जीवन से प्रेम की सब जड़ें काट दो। यह दूसरी गलती है। प्रेम गलत दिशा में गया था, इसलिए असफल हुआ है। प्रेम असफल नहीं हुआ, गलत दिशा असफल हुई है। लेकिन कुछ लोग इसका अर्थ लेते हैं कि प्रेम असफल हो गया है तो अप्रेम की शिक्षाएँ हैं, अपने प्रेम को सिकोड़ लो, बन्द कर लो, अपने से दूर मत जाने दो। अपने से बाहर तो बन्धन बनेगा, मोह बनेगा, आसक्ति बनेगी, अपने भीतर बन्द कर लो। प्रेम को बाहर मत बहने दो। जीवन के प्रति उदासीन हो जाओ। प्रेम की खोज ही बन्द कर दो। एक यह दिशा पैदा होती है, यह विफलता का ही परिणाम है, यह रिएक्शन है फ्रस्ट्रेशन का। प्रेम की तरफ पीठ करके जानेवाले लोग उसी गलती में हैं जिस गलती में प्रेम को शरीर के तल पर खोजनेवाले लोग थे। दिशा गलत थी, प्रेम की खोज गलत नहीं थी, लेकिन दिशा गलत है, यह नहीं

दिखायी पड़ा। दिखायी पड़ा कि प्रेम की खोज ही गलत है। तो प्रेम के उदासीन शिक्षकों का जन्म हुआ जिन्होंने प्रेम की निन्दा की, प्रेम को बुरा कहा, प्रेम को बन्धन बताया, प्रेम को पाप कहा, ताकि व्यक्ति अपने में बन्द हो जाये। लेकिन उन्हें इस बात का पता नहीं रहा कि व्यक्ति जब प्रेम की सम्भावना छोड़ देगा, तो उसके बाद सिर्फ अहंकार की सम्भावना शेष रह जाती है, और कुछ भी शेष नहीं रह जाता।

प्रेम अकेला तत्त्व है, जो अहंकार को तोड़ता है और मिटाता है। प्रेम अकेला रसायन है, जिसमें अहंकार गलता है और पिघलता है और बह जाता है। जो लोग अपने को प्रेम से वंचित कर लेंगे, वे सिर्फ इगोइस्ट हो सकते हैं, सिर्फ अहंकारी हो सकते हैं और कुछ भी नहीं। उनके पास अहंकार को गलाने और तोड़ने का कोई उपाय न रहा, कोई मार्ग न रहा। प्रेम स्वयं के बाहर ले जाता है, प्रेम अकेला द्वार है जिससे हम अपने बाहर निकलते हैं और अनन्त की यात्रा पर चरण रखते हैं। प्रेम जो अनन्त है, जो जगत् है, जो जीवन है, उससे जुड़ता है, लेकिन जो प्रेम की यात्रा बन्द कर देते हैं, वे टूटकर सिर्फ अपनी 'मैं' में, अपने अहंकार में, अपनी इगो में कैद हो जाते हैं, बन्द हो जाते हैं। एक तरफ विफल प्रेमी हैं, दूसरी तरफ अहंकार से भरे साधु और संन्यासी हैं। अहंकार इस बात का होता है—प्रेम इस बात की खोज है कि मैं सबके साथ अकेला खोज लूं, समस्त के साथ हो जाऊँ, इस बात का निर्णय है कि मैंने अकेला खोजना बन्द कर दिया। मैं, मैं हूं। मैं अलग ही रहूँगा। मैं अपनी सत्ता से निश्चिन्त हो गया हूँ। मैंने मान लिया है कि 'मैं' मैं हूँ। बूँद ने स्वीकार कर लिया कि सागर से मिलना असंभव है या मिलने की कोई जरूरत नहीं है। वह बूँद जो अपने में बन्द हो गयी, वह भी आनन्द को उपलब्ध नहीं हो सकी। वह सिकुड़ गयी, बहुत छोटी हो गयी, बहुत क्षुद्र हो गयी। अहंकार क्षुद्र कर देता है, सिकोड़ देता है, बहुत छोटा बना देता है। आनन्द विराट् के साथ सम्भव है, क्षुद्र के साथ नहीं। आनन्द अनन्त के साथ सम्भव है, सीमित के साथ सम्भव नहीं। जहाँ सीमा है, वहाँ दुःख है, जहाँ सीमा नहीं है, वहाँ आनन्द है। जहाँ सीमा है वहाँ अन्त है, वहाँ मृत्यु है। जहाँ सीमा नहीं है, वहाँ अनंत है, वहाँ अमृत है। क्योंकि जहाँ सीमा नहीं वहाँ जन्म नहीं, वहाँ मृत्यु नहीं। अहंकार क्षुद्र के साथ जुड़ जाता है। अपने को [illegible] मानकर [illegible] जाता है, [illegible] जाता है सिकुड़ने में, बह [illegible] में, मिट जाने में, [illegible] साथ [illegible] जाने में जाने को [illegible] लेता है।

मैंने सुना है, एक नदी समुद्र की तरफ यात्रा कर रही थी जैसे सभी नदियाँ समुद्र की तरफ यात्रा करती हैं। भागी चली जा रही थी नदी समुद्र की तरफ। कौन खींचे लिये जाता था? मिलने की कोई आशा, एक हो जाने की, विराट् के साथ संयुक्त हो जाने की कोई कामना, किनारों को तोड़ देने की, सीमाओं को तोड़ देने की, तल्हीन सागर के साथ एक हो जाने की कोई प्यास नदी को भगाये लिये जा रही थी। नदियाँ भाग रही हैं, वह नदी भी भाग रही थी। कोई प्रेम, जैसा प्रत्येक मनुष्य की चेतना भाग रही है अनन्त के सागर के साथ एक होने को, वैसे वह नदी भी भाग रही थी। लेकिन बीच में आ गया एक मरुस्थल। बड़ा था मरुस्थल। नदी उसमें खोने लगी। नदी दौड़ने लगी तेजी से, संघर्ष करने लगी। तोड़ देगी। उसने पहाड़ तोड़े थे, उसने गाँव तोड़े थे, उसने मार्ग बनाये थे। वह इस मरुस्थल में भी मार्ग बना लेगी। लेकिन महीने बीत गये, सालें बीतने लगी, लेकिन मार्ग नहीं बन पाया। नदी मरुस्थल में खोती चली जाती है, रेत उसे पीती चली जाती है। राह नहीं बनती और तब नदी घबरा गयी और रोने लगी। उस मरुस्थल की रेत ने कहा, अगर हमारी सुनो तो एक बात स्मरण रखो। मरुस्थल को केवल वे ही नदियाँ पार कर सकती हैं जो हवाओं के साथ एक हो जाती हैं, जो अपने को मिटा देती हैं। जैसे ही वे अपने को मिटाती हैं, हवाएँ उन्हें अपने कंधों पर उठा लेती है और फिर मरुस्थल पार हो जाता है। मरुस्थल से लड़कर कभी कोई पार नहीं होता है। बहुत नदियाँ आयी हैं इस मरुस्थल को पार करने, वे खो गयी, केवल वे ही नदियाँ उठ पायी हैं जिन्होंने अपने को खो दिया, भाप बन गयी, हवाओं के कंधे पर उठ गयीं, मरुस्थल को पार कर गयीं। लेकिन वह नदी कहने लगी, मैं मिट जाऊँगी? मैं मिटना नहीं चाहती हूँ। सागर की रेत ने कहा कि अगर बनी रहना चाहती हो तो मिट जाओ, तो बनी भी रह सकती हो।

पता नहीं, उस नदी ने उस सागर की रेत की बात सुनी या नही। जरूर सुन ली होगी, क्योंकि नदियाँ आदमियों जैसी नासमझ नहीं होती। वह सवार हो गयी होगी हवाओं के ऊपर। पार कर गयी होगी, बादल बन गयी होगी, उठ गयी होगी ऊपर, उसने नयी दुनिया की यात्रा कर ली होगी। आदमी का अहंकार लड़-लड़ कर टूट जाता है, लेकिन मिटने को राजी नहीं होता। जितना लड़ता है, उतना ही टूटता है, उतना ही नष्ट होता है, क्योंकि किससे हम लड़ रहे हैं? स्वयं की जड़ों से। किससे हम लड़ रहे हैं? स्वयं के ही विराट् रूप से। किससे हम लड़ रहे है? स्वयं की सत्ता से। टूटेंगे, मिटेंगे, नष्ट होंगे,

दुखी होंगे, पीड़ित होंगे, प्रेम मे जो बचते हैं। स्मरण रहे, प्रेम, मैंने कहा, एक हो जाने की आकांक्षा है और एक वही हो सकता है जो मिटने को राजी हो। जो मिटने को राजी नहीं होता, उसके लिए दूसरी दिशा खुल जाती है। वह अहंकार की दिशा है। तब वह अपने को बनाने को, मजबूत करने को, पुष्ट करने को, ज्यादा सख्त अपने आस-पास दीवाल उठाने को, किला बनाने को उत्सुक हो जाता है। अपने 'मैं' को मजबूत करने की यात्रा में संलग्न हो जाता है। प्रेमी असफल हो गये; क्योंकि शरीर के तल पर एकता खोजी। संन्यासी असफल हो जाते हैं, क्योंकि अहंकार के तल पर अलग होने का निर्णय करते हैं। क्या कोई तीसरा मार्ग नही? उसी तीसरे मार्ग की आपसे बात करना चाहता हूँ।

अहंकार तो कोई मार्ग नहीं। अहंकार तो दुख की दिशा है, अहंकार तो भ्रांति है। 'मैं' जैसी कोई चीज नही है, भीतर से सिवाय शब्दों के। जब सब शब्द छूट जाते हैं और आदमी मौन होता है तो पाता है कि वहाँ कोई 'मैं' नही है। कभी मौन होकर देखें। कभी चुप होकर देखें, कभी शांत होकर देखें, वहाँ फिर कोई 'मैं' नही पाया जाता। वहाँ कोई 'मैं' नहीं है। वहाँ एक्जीस्टेंस है, वहाँ सत्ता है, अस्तित्व है। लेकिन 'मैं' नही है। 'मैं' मनुष्य की ईजाद है। 'मैं' मनुष्य का आविष्कार है। बिलकुल झूठा, उतना ही झूठा जैसे हमारे नाम झूठे हैं। क्यों, कोई आदमी नाम को लेकर पैदा नही होता? लेकिन जन्म के बाद हम नाम दे देते हैं, ताकि दूसरे लोग उसे पुकार सकें, बुला सकें। नाम की उपयोगिता है, यूटिलिटी है, लेकिन नाम की कोई सत्ता नही, कोई अस्तित्व नही। दूसरे लोग नाम लेकर बुलाते हैं, मैं खुद क्या कहकर अपने को बुलाऊँ? मैं अपने को 'मैं' कहकर बुलाता हूँ। 'मैं' खुद के लिए, खुद को पुकारने के लिए दिया गया नाम है और नाम दूसरे को पुकारने के लिए दिये गये नाम हैं। नाम भी उतना ही असत्य है, जितना 'मैं' का भाव असत्य है। लेकिन इसी 'मैं' को हम मजबूत करते जाते हैं। 'मैं' को मोक्ष चाहिए, 'मैं' को परमात्मा चाहिए, 'मैं' को सुख चाहिए, लेकिन 'मैं' को कुछ नहीं मिल सकता है, क्योंकि 'मैं' बिलकुल झूठा है, 'मैं' असत्य है। जो असत्य है, उसे कुछ भी नही मिल सकता है। 'मैं' भी असफल हो जाता है और प्रेम भी असफल हो जाता है और दो ही दिशाएँ हैं—एक प्रेम की दिशा है और एक अहंकार की दिशा है। मनुष्य के जगत् में दो मार्गों के अतिरिक्त कोई तीसरा मार्ग नहीं है—एक 'मैं' का, एक प्रेम का। प्रेम असफल होता है, क्योंकि हम शरीर के तल पर खोजते हैं। 'मैं' असफल होता है, क्योंकि असत्य है। तीसरा रास्ता हो सकता है? तीसरा यह हो सकता है कि हम 'मैं' की सम्यक् दिशा खोजें

मैंने थूक दिया तो अब प्रेम नहीं मिलेगा तो शायद यह सोचता है कि यह मेरे ऊपर नहीं थूकता था इसलिए मैं इसे प्रेम करता था जो थूकने से प्रेम बन्द हो जायगा। पागल है तू। मैं प्रेम इसलिए करता हूँ कि मैं प्रेम ही कर सकता हूँ और कुछ नहीं कर सकता हूँ। तू थूके, तू गाली दे, तू पैरों पर सिर रखे, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता है। मैं प्रेम ही कर सकता हूँ। मेरे भीतर प्रेम का दिया जल गया। मेरे पास से जो भी निकलेगा उस पर प्रेम पड़ेगा। कोई न निकले तो एकान्त में प्रेम का दिया जलता रहेगा। अब इसका किसीसे कोई सम्बन्ध न रहा। यह मेरा स्वभाव हो गया है।'

प्रेम का जब तक किसीसे सम्बन्ध है, तब तक, आप शरीर के तल पर प्रेम खोज रहे हैं जो असफल हो जायगा। प्रेम जब जीवन के भीतर, स्वयं के भीतर जलता हुआ एक दिया बनता है, रिलेशनशिप नहीं, स्टेटस ऑफ माइण्ड, जब किसीसे प्रेम एक सम्बन्ध नहीं, बल्कि उसका प्रेम स्वभाव बनता है, तब जीवन में प्रेम की घटना घटती है। तब प्रेम का असली सिक्का हाथ में आता है। तब यह सवाल नहीं है कि क्या है प्रेम, तब यह सवाल नहीं है कि किस कारण है प्रेम। तब प्रेम अकारण है, तब प्रेम इससे-उससे नहीं है, तब प्रेम प्रेम है। कोई हो तो प्रेम के दिये का प्रकाश उस पर पड़ेगा। आदमी हो तो आदमी, वृक्ष हो तो वृक्ष, सागर हो तो सागर, चाँद हो तो चाँद; कोई न हो तो फिर एकांत में प्रेम का दिया जलता रहेगा।

प्रेम परमात्मा तक ले जाने का द्वार है, लेकिन जिस प्रेम को हम जानते हैं वह शरीर नरक तक ले जाने का द्वार बन गया है। जिस प्रेम को हम जानते हैं, वह पागलखाने तक ले जाने का द्वार बन गया है। जिस प्रेम को हम जानते हैं वह कलह, द्वन्द्व, संघर्ष, हिंसा, क्रोध और घृणा इन सबका द्वार बन गया है। वह प्रेम झूठा है। जिस प्रेम की मैं बात कर रहा हूँ, वह प्रभु तक ले जाने का मार्ग बनता है, लेकिन वह प्रेम संबंध नहीं है। वह प्रेम स्वयं के चित्त की दशा है, उसका किसीसे कोई नाता नहीं, आपका नाता है। इस प्रेम के सम्बन्ध में थोड़ी सी बात समझ लेना है और इस प्रेम को जमाने की दिशा में कुछ स्मरणीय बात समझ लेना जरूरी है।

पहली बात, जब तक आप प्रेम को एक सम्बन्ध समझते रहेंगे, एक रिलेशनशिप, तब तक आप असली प्रेम को उपलब्ध न हो सकेंगे। वह बात गलत है, वह प्रेम की परिभाषा ही भ्रांत है। जब तक माँ सोचती है बेटे से प्रेम, मित्र सोचता है मित्र से प्रेम, पत्नी सोचती है पति से प्रेम, भाई सोचता है बहन से प्रेम, जब तक सम्बन्ध की भाषा में कोई प्रेम को सोचता है, तब तक उसके

जीवन में प्रेम का जन्म नहीं हो सकता है। सम्बन्ध की भाषा में नहीं, किसीसे प्रेम नहीं, मेरा परिपूर्ण होना है, मेरा प्रेमपूर्ण होना अकारण, चौबीस घंटे मेरा प्रेमपूर्ण होना है। यह प्रेम मेरा स्वभाव, मेरी श्वास बने, श्वास आये, जाये ऐसा मेरा प्रेम चौबीस घंटे सोते, जागते, उठते हर हालत में मेरा जीवन प्रेम की भाव-दशा है, एक लविंग एटिट्यूड, एक सुगन्ध जैसे फूलों से सुगन्ध गिरती है। किसके लिए गिरती है ? राह से जो निकलते हैं उनके लिए। फूल को शायद पता भी न हो कि कोई राह से निकलेगा। किसीके लिए जो फूल को तोड़कर माला बना लेंगे और भगवान् के चरणों में चढ़ा देंगे, उनके लिए। किसके लिए फूल की सुगन्ध गिरती है ? किसी-के लिए नहीं। फूल के अपने आनन्द से गिरती है। फूल खिलता है यह उसका आनन्द है। सुगन्ध बिखर जाती है। दिये से रोशनी बरसती है, किसके लिए ? कोई अंधेरे रास्ते पर भटक जाये इसलिए ? किसीके रास्ते गड्ढे दिखायी पड़ जायँ इसलिए ? दिखायी पड़ जाते होंगे यह दूसरी बात है, लेकिन दिये की रोशनी अपने लिए, अपने आनन्द से अपने स्वभाव से, गिरती है, और बरसती है। प्रेम भी आपका स्वभाव बने उठते, बैठते, सोते, जागते, अकेले में, भीड़ में वह बरसता रहे फूलों की सुगन्ध की तरह, दिये की रोशनी की तरह, तो प्रेम प्रार्थना बन जाता है, तो प्रेम प्रभु तक ले जाने का मार्ग बन जाता है, तो प्रेम जोड़ देता है समस्त से, सबसे, अनन्त से। इसका अर्थ यह नहीं है कि प्रेम तब सम्बन्ध नहीं बनेगा। वैसा प्रेम चौबीस घण्टे बनेगा, सम्बन्ध बनेगा, लेकिन सम्बन्ध पर सीमित नहीं होगा। उसके प्राण सम्बन्धों के ऊपर से आते होंगे। गहरे से आते होंगे। तब भी पत्नी पत्नी होगी, पति पति होगा, पिता पिता होगा, माँ माँ होगी। तब भी वह बेटे पर प्रेम करेगी। लेकिन बेटे के कारण नहीं, माँ के अपने प्रेम के कारण। तब पत्नी का प्रेम चलेगा, बहेगा, लेकिन पति के कारण नहीं, अपने कारण। चोट भीतरी होगी, भीतर से आयेगी और बहेगी। वह अन्तरभाव होगा, बाहर से खींचा गया नहीं। अभी हम सब बाहर से खींचे गये प्रेम पर जी रहे हैं, इसलिए वह प्रेम कलह बन जाता है। जो भी चीज जबरदस्ती खींची गयी है, वह दुःख और पीड़ा बन जाती है। जो भीतर से स्वतः प्रकट, सहज प्रकट हुई है, वह बात ही और हो जाती है। तब जीवन बहुत प्रेमपूर्ण होगा, लेकिन प्रेम एक सम्बन्ध नहीं। साधक को स्मरण रखना है कि प्रेम उसकी चित्तदशा बने तो ही प्रभु के मार्ग पर, सत्य के मार्ग पर यात्रा की जा सकती है, तो ही उसके मन्दिर तक पहुँचा जा सकता है।

पहली बात, सम्बन्ध में प्रेम के भाव को भूल जायें। वह परिभाषा गलत है, वह प्रेम को देखने का ढँग गलत है। जब कोई गलत ढँग गलत दिखायी पड़ जाय, तब ठीक ढँग देखा जा सकता है। तो पहली बात है, जो 'फाल्स लव' है, वह जो झूठा प्रेम है, जो सम्बन्ध को प्रेम समझता है, उसकी व्यर्थता को समझ लें। वह सिवाय असफलता के और चिन्ता के और कहीं भी नहीं ले जायगा।

फिर दूसरी बात है। वह दूसरी बात यह है कि क्या आपके भीतर से प्रेम का जन्म हो सकता है? भीतर से, बाहर कोई न हो तो भी? हो सकता है। जब भी प्रेम का जन्म हुआ, वैसा ही हुआ है। हमारे भीतर वह बीज छिपा है जो फूट सकता है, लेकिन हमने कभी उस पर ध्यान नहीं दिया। हम सम्बन्ध वाले प्रेम पर ही जीवन भर संघर्ष करते रहे हैं। हमने कभी ध्यान नहीं दिया कि उसके पार भी कोई प्रेम की संभावना है, कोई रूप है। हम हमेशा रेत से तेल निकालने की कोशिश करते रहें हैं। रेत से तेल तो नहीं निकला, निकल नहीं सकता था, लेकिन रेत से तेल निकालने में हम भूल ही गये कि ऐसे भी बीज थे जिनसे तेल निकल सकता था। हम सब सम्बन्ध वाले प्रेम से जीवन को निकालने की कोशिश कर रहे हैं। वहाँ से नहीं निकला है, नहीं निकलेगा, लेकिन समय खोते हैं, शक्ति खोते हैं और जहाँ से निकल सकता था, उस तरफ ध्यान भी नहीं जाता है।

प्रेम चित्त की एक दशा की तरह पैदा होता है, बस वैसा ही पैदा होता है; जब भी होता है वैसा ही पैदा होता है। उसे कैसे पैदा करें, वह कैसे जन्म ले ले, यह बीज कैसे फूट आये और अंकुरित हो जाये? तीन बातें, तीन सूत्र हैं इस सम्बन्ध में, स्मरण रख लेना चाहिए।

पहली बात, जब अकेले में हों तब भीतर खोज करें कि क्या मैं प्रेमपूर्ण हो सकता हूँ? जब कोई न हो तब खोज करें कि क्या मैं प्रेमपूर्ण हो सकता हूँ? क्या अकेले में लविंग, क्या अकेले में, एकांत में भी आँखें ऐसी हो सकती हैं जैसे कि प्रेम पास मौजूद हो? क्या अकेले में, शून्य में, एकांत में, एक रिक्तता में भी मेरे प्राणों से भी प्रेम की धाराएँ उस रिक्त स्थान को वह सकती हैं जहाँ कोई नहीं, कोई पात्र नहीं, कोई आब्जेक्ट नहीं, क्या वहाँ भी प्रेम मुझसे वह सकता है? इसको ही मैं प्रार्थना कहता हूँ। उसको नहीं प्रार्थना कहता कि हाथ जोड़े मन्दिरों में बैठे हैं। एकान्त में जो प्रेम को बहाने में सफल हो रहा है, कोशिश कर रहा है, वह प्रार्थना में है, वह प्रेयर फुल मूड में है। तो अकेले में बैठकर देखें कि क्या मैं प्रेमपूर्ण

हो सकता हूँ ? लोगों के साथ प्रेमपूर्ण होकर बहुत देख लिया होगा, अब अकेले में थोड़ी खोज करें कि क्या मैं प्रेमपूर्ण हो सकता हूँ ?

पहला सूत्र, एकान्त में प्रेमपूर्ण होने का प्रयोग करें, खोजें, टटोलें अपने भीतर। हो जायगा, होना है, हो सकता है। जरा भी कोई नहीं है, कभी प्रयोग ही नहीं किया उस दिशा में, इसलिए ख्याल में बात नहीं आ पायी है। निर्जन में भी फूल खिलते हैं और सुगन्ध फैला देते हैं। निर्जन में, एकांत में प्रेम की सुगन्ध को पकड़ें। जब एक बार एकान्त में प्रेम की सुगन्ध पकड़ जायगी तो आपको ख्याल आ जायगा कि प्रेम कोई रिलेशनशिप नहीं, कोई सम्बन्ध नहीं। प्रेम स्टेटस ऑफ माइण्ड है, स्टेटस आफ कॉनशसनेस है, चेतना की एक अवस्था है।

दूसरी बात, दूसरा सूत्र, मनुष्येतर जगत् में प्रेम का प्रयोग करें। एक पत्थर को भी हाथ में उठायें तो ऐसे जैसे किसीको प्रेम कर रहे हैं। एक पहाड़ को भी देखें तो ऐसे जैसे अपने को देख रहे हों। मनुष्येतर जगत् में, पहला एकांत में, दूसरा मनुष्येतर जगत् में। पत्थर को, रेत को, सागर को देखें तो ऐसे, जैसे प्रेमी को। प्रेम बहा चला जाय, आँख खो जाय। कुर्सी को भी छुएँ तो ऐसे जैसे प्रेमी को स्पर्श कर रहे हों। मनुष्येतर जगत् में क्यों ? क्योंकि मनुष्य को जब भी आप प्रेम करते हैं, तो वहाँ से उत्तर आता है। उत्तर आया कि रिलेशनशिप खड़ी हो जाती है, सम्बन्ध खड़ा हो जाता है। पत्थर को छुएँगे तो कोई उत्तर नहीं आयेगा। सागर को देखेंगे प्रेम से तो सागर कोई उत्तर नहीं देगा, आपके गले में बाहें भी डाल देगा और कहेगा, मैं भी आपको प्रेम करता हूँ। कोई उत्तर नहीं आयेगा, प्रेम निरुत्तर छूट जायगा। उस तरफ से कोई जवाब नहीं आनेवाला है। आप प्रेम करेंगे और प्रेम छूट जायगा। जवाब की आकांक्षा के कारण प्रेम मुक्त नहीं हो पाता, सम्बन्ध बना रहता है। एक व्यक्ति को मैं प्रेम करता हूँ, फिर मैं अपेक्षा करता हूँ उत्तर आना चाहिए। जब उत्तर नहीं आता है तो फ्रस्ट्रेशन आता है, दुख आता है, पीड़ा आती है, चिन्ता आती है। निरुत्तर प्रेम की सम्भावना बढ़नी चाहिए, लेकिन निरुत्तर प्रेम की पहली सम्भावना मनुष्य को छोड़कर ही हो सकती है। मनुष्य के साथ एकदम प्रयोग करना आसान नहीं है। वृक्षों के साथ हो सकता है, पत्थरों के साथ हो सकता है, सागर के साथ हो सकता है। इसलिए प्रकृति में जो कुछ भी है, उस पर प्रेम को भेजो। वहाँ अपेक्षा नहीं, वहाँ एक्सपेक्टेशन नहीं हो सकता है कि आप राह देखेंगे, उत्तर आयेगा। उत्तर न आयेगा, आपका प्रेम ही आ जायेगा और आपको पहली दफा पता चलेगा कि उत्तर के लिए नहीं है प्रेम। प्रेम दान है, माँग नहीं। प्रेम दान है, लौटना

नहीं। प्रेम का आनन्द दे देने में है, पा लेने में नहीं। यह दूसरा सूत्र अब स्पष्ट हो जायेगा कि प्रेम दान है, माँग नहीं। कोई उत्तर की अपेक्षा नहीं है, कोई रिस्पोंस की जरूरत नहीं है। हमने दे दिया है और सागर ने स्वीकार कर लिया तो धन्यवाद है सागर का और पत्थर ने स्वीकार कर लिया है तो धन्यवाद है पत्थर का। लौटते उत्तर का कोई सवाल नहीं है। तो यह दूसरा सूत्र स्पष्ट करेगा आपके भीतर इस संभावना को कि प्रेम एक चित्त की दशा है, उत्तर नहीं है, तो कोई सम्बन्ध नहीं बनता है। फिर तीसरी बात! पहला एकांत, दूसरा मनुष्येतर जगत्, तीसरा असम्बन्धित मनुष्यता, जिनसे आप सम्बन्धित हैं उन पर नहीं; जिनसे आप बिलकुल असम्बन्धित हैं, जिनसे कुछ लेना-देना नहीं—राह चलते लोग, ट्रेन में बैठे हुए लोग, बस में बैठे हुए लोग जिनसे कोई सम्बन्ध नहीं है, जिनसे कोई नाता नहीं है उनके प्रति प्रेम। पड़ोस में आपके कोई बैठ गया है बस में आकर, उसके प्रति प्रेम, अपरिचित के, अनजान के स्ट्रेंजर के प्रति।

तीसरा सूत्र, अजनबी के प्रति प्रेम। क्योंकि अजनबी के प्रति प्रेम बात ही और है, अपरिचित के प्रति प्रेम बात और है। परिचित के प्रति प्रेम अपेक्षाओं से भरा है, सम्बन्धों से भरा है। उसने कल कुछ किया था उसके कारण प्रेम है, वह कल कुछ करेगा इसके कारण प्रेम है। उस प्रेम के पीछे हानियाँ जुड़ी हैं, उस प्रेम के पीछे याददाश्तें जुड़ी हैं, अतीत जुड़ा है, भविष्य जुड़ा है। अजनबी से कोई सम्बन्ध नहीं है कल का, आनेवाले कल का भी कोई सम्बन्ध नहीं है। उससे प्रेम निपट प्रेम है। उसके आगे-पीछे कोई लाभ-हानि नहीं है, कोई उपाय नहीं है, कोई मार्ग नहीं है। उसे हम जानते भी नहीं हैं, वह कहीं विराट् जगत् में कल खो जायेगा, कुछ पता नहीं। अजनबी के प्रति प्रेम असम्बन्धित मनुष्यता के प्रति प्रेम, तीसरा सूत्र है। अगर आपको अपने भीतर से प्रेम को पैदा कर लेना है जिसे स्टेटस ऑफ माइण्ड कह रहा हूँ। तो यह तीसरा सूत्र है। और जब आप पत्थरों को प्रेम कर पायेंगे, सागर को प्रेम कर पायेंगे, एकांत को प्रेम कर पायेंगे तो जो निकट है, जो सम्बन्धित है उसे प्रेम नहीं कर पायेंगे? उसे तो प्रेम कर ही पायेंगे, वह तो सहज बह जायेगा। यह तीन की तैयारी हो तो उसे तो प्रेम कर ही पायेंगे, उसे तो बहुत प्रेम उपलब्ध हो जायेगा। लेकिन उसके प्रेम में भी क्रान्तिकारी फर्क हो जायेगा, क्योंकि जिसने एकांत को प्रेम किया, जिसने अजनबी को प्रेम किया उसके प्रेम की क्वालिटी, उसके प्रेम का गुण बदल जायेगा। माँ बेटे को प्रेम करेगी तो ऐसे जैसे एकांत को करती हो, ऐसे जैसे पत्थर को करती हो, उत्तर की

कोई अपेक्षा नहीं। ऐसे जैसे अजनबी की करती हो, जो कल भटक जायेगा तो कोई पीड़ा नहीं छोड़ जायेगा। तब पत्नी पति को प्रेम करेगी, पति पत्नी को प्रेम करेगा, लेकिन उस प्रेम की क्वालिटी से प्रेम का गुण-धर्म बदल जायेगा। उस प्रेम में कोई अपेक्षा नहीं, कोई माँग नहीं, कोई ईर्ष्या नहीं, कोई द्वेष नहीं, कोई कलह नहीं, कोई छीना-झपटी नहीं। वह प्रेम तब एक सहज दान हो जाता है, और यह सहज दान जितना बढ़ता चला जाये, उतना ही व्यक्ति का अहंकार नष्ट हो जाता है, विलीन हो जाता है।

प्रेम अहंकार की मृत्यु है और जहाँ अहंकार नहीं, वहाँ हम होंगे एक समस्त से, वहाँ हम जुड़ गये विराट् से, वहाँ परमात्मा से मिलन हो गया। उस मिलन की प्यास है, उस मिलन की दौड़ है, उस मिलन की आकांक्षा है। बूँद सागर से टूट गयी, सागर होना चाहती है। रेत हवाओं में उड़ गयी है, एक कण अपने तट पर वापस लौट आना चाहता है। ऐसे ही एक-एक मनुष्य का व्यक्तित्व वापस लौट आना चाहता है प्रभु के सागर में। हमने अब तक जो उपाय किये हैं, वे सब उपाय गलत साबित हुए हैं। या तो हमने झूठे प्रेम का उपाय किया है, या हमने अहंकार का उपाय किया है। वे दोनों उपाय व्यर्थ हैं। सम्यक् प्रेम, राइट लव, क्या होगा उस दिशा में? मैंने तीन सूत्र कहे। इनका प्रयोग करें, ताकि आपके भीतर वह प्रेम जन्म पा सके, जो आपका है, आपका स्वभाव है, जो आपकी श्वास-श्वास है। तब आप जो भी छुएँगे, तब आप जो भी देखेंगे, तब आप जो भी सुनेंगे, वह सभी प्रेम-पात्र, वह सभी प्रीतम बन जायेगा और जिस दिन सारा जीवन प्रीतम बन जाता है, उस दिन मनुष्य प्रभु के मंदिर में प्रविष्ट होता है, उसके पीछे नहीं। उसके पहले कभी नहीं। जिस दिन सारा जीवन प्रीतम बन जाता है, उस दिन सारी खबरें उसकी ही खबरें हो जाती हैं। लेकिन यह कोई आसमान से नहीं घट जायेगी घटना। यह प्रत्येक को अपने भीतर पात्रता, प्रत्येक को अपने भीतर द्वार, प्रत्येक को अपने भीतर एक ओपनिंग, प्रत्येक को अपने भीतर के फूल को खिला लेना है, तो यह घटना घट सकती है। यह तीसरा सूत्र है। चित्त को विस्मय से भरें, जीवन के रस में तल्लीन हों और आत्मा को प्रेमपूर्ण करें। फिर इन तीन सीढ़ियों को पार करें और देखें कि क्या हो जाता है। अनन्त संपदा है मनुष्य को पाने के लिए। अनन्त आनन्द उसे उपलब्ध हो सकता है, लेकिन हम व्यर्थ ही जीते और नष्ट हो जाते हैं।

एक छोटी-सी घटना और, मैं अपनी बात पूरी करूँगा। फिर हम सुबह के ध्यान के लिए बैठेंगे।

एक राजधानी में एक भिखारी एक सड़क के किनारे बैठकर बीस-पच्चीस वर्षों तक भीख माँगता रहा। फिर वह मर गया। जीवन भर उसने यही कामना की कि मैं भी सम्राट् हो जाऊँ। कौन भिखारी ऐसा है जो सम्राट् होने की कामना नहीं करता? जीवन भर हाथ फैलाये खड़ा रहा रास्ते पर। लेकिन हाथ फैलाकर, एक-एक पैसा माँगकर कभी कोई सम्राट् हुआ है? माँगने की आदत जितनी बढ़ती है, उतना ही बड़ा भिखारी हो जाता है। सम्राट् कहे जायेंगे। तो २५ वर्ष पहले छोटा भिखारी था, २५ वर्ष बाद पूरे नगर में प्रसिद्ध भिखारी हो गया, लेकिन सम्राट् नहीं हो सका। फिर मौत आ गयी। मौत कोई फिक्र नहीं करती। सम्राटों को भी आ जाती है, भिखारियों को भी आ जाती है। और सच्चाई शायद यही है कि सम्राट् थोड़े बड़े भिखारी होते हैं, भिखारी जरा छोटे सम्राट् होते हैं। और क्या फर्क होता होगा! वह मर गया भिखारी तो गाँव के लोगों ने उसकी लाश को उठाकर फिकवा दिया। फिर उन्हें लगा कि २५ वर्ष एक ही जगह बैठकर वह भिखारी माँगता रहा। सब जगह गन्दी हो गयी। गन्दे चीथड़े फैला दिये हैं। टीन टप्पर बर्तन, भाँडे फैला दिये हैं। सब फिकवा दिया। फिर किसीको ख्याल आया कि २५ वर्ष तक जमीन भी गन्दी कर दी। थोड़ी जमीन भी उठाकर थोड़ी मिट्टी भी साफ कर दें। ऐसा सब व्यवहार करते हैं, मर गये आदमी के साथ। भिखारी के साथ ही करते हों, ऐसा नहीं। जिनको प्रेमी कहते हैं उनके साथ भी यही व्यवहार होता है। उखाड़ दी, थोड़ी मिट्टी भी खोद डाली। मिट्टी खोदी तो नगर दंग रह गया। भीड़ लग गयी। सारा नगर वहाँ इकट्ठा हो गया। वह भिखारी जिस जगह बैठा था वहाँ बड़ा खजाना गड़ा था। सब कहने लगे, कैसा पागल था। मर गया पागल, भीख माँगते-माँगते। जिस जमीन पर बैठता था वहाँ बड़े हंडे गड़े हुए थे जिनमें बहुमूल्य हीरे-जवाहरात थे। स्वर्ण-अशर्फियाँ थीं। वह सम्राट् हो गया होता, लेकिन उसने वह जमीन न खोदी जिस पर वह बैठा हुआ था। वह उन लोगों की तरफ हाथ पसारे रहा जो खुद ही भिखारी थे, जो खुद ही दूसरों से माँग-माँगकर ला रहे थे। उन्होंने भी अपनी जमीन नहीं खोदी होगी। उसने भी अपनी जमीन नहीं खोदी। फिर गाँव के लोग कहने लगे, बहुत अभागा था। मैं भी उस गाँव में आ गया था। मैं भी उस भीड़ में खड़ा था। मैंने लोगों से कहा, उस अभागे की फिक्र छोड़ो। अपने घर, अपनी जमीन को तुम खोदो। कहीं वहाँ कोई खजाना तो नहीं? पता नहीं, उस गाँव के लोगों ने सुना कि नहीं। आपसे भी यही कहता हूँ—अपनी जमीन खोदो, जहाँ तुम खड़े हो वहीं खोदो। कहता हूँ, वहाँ खजाना हमेशा है। लेकिन हम सब भिखारी हैं और कहीं माँग रहे हैं। प्रेम के बड़े खजाने भीतर

है, लेकिन हम दूसरों से माँग रहे हैं कि हमें दो। पत्नी पति से माँग रही है, मित्र मित्र से माँग रहा है कि हमें प्रेम दो। भिखारी भिखारी से माँग रहा है। इसलिए दुनिया बड़ी दुखी हो गयी है। लेकिन अपनी जमीन पर, जहाँ हम खड़े हैं, वहाँ कोई खोजने की फिक्र नहीं करता। वह कैसे खोदा जा सकता है, यह थोड़ी-सी बात मैंने कही है। वहाँ खोदें, वहाँ बहुत खजाना है -प्रेम का खजाना। खोदते-खोदते ही एक दिन आदमी परमात्मा के खजाने तक पहुँच जाता है और कोई रास्ता न कभी था, न है, न हो सकता है। यह तीसरे सूत्र की बात पूरी हुई।

अब हम सब सुबह के ध्यान के लिए बैठेंगे। सुबह के ध्यान में बैठने के पहले एक बात और आपसे कह देना है। दोपहर साढ़े तीन से साढ़े चार, तीन दिन तक हमने बातचीत की शब्दों से। मैंने आपसे कुछ कहा, किसीने सुना होगा, किसीने नहीं सुना होगा। किसीने सुनकर भी समझ लिया होगा, किसीने सुनकर भी नहीं समझा होगा। शब्दों की अपनी सीमा है, अपना सामर्थ्य है। शब्द उसे कहने में समर्थ हैं जो दिखायी पड़ता है। जो अनुभव होता है, इशारे भर किये जा सकते हैं। इशारे चूक भी सकते हैं। तो दोपहर आज बिना शब्द के थोड़ी देर बात करेंगे। थोड़ा 'साइलेंस कम्युनिकेशन' के लिए, थोड़ा मौन संभाषण के लिए बैठेंगे। साढ़े तीन बजे आकर मैं यहाँ बैठ जाऊँगा। आप भी चुपचाप आकर बैठ जाइयेगा। घंटे-भर कोई बात न होगी। बस, चुपचाप बैठेंगे। ऐसे बातचीत मैं करूँगा तो शायद अगर आप तैयार रहें तो आपको कुछ सुनायी पड़े, कुछ पता चले। लेकिन शब्दों से कोई बात न होगी। एक घंटा चुपचाप यहाँ बैठे रहना है। जैसी आपकी मौज हो, बैठ जाना है। किसी को लेटना हो, लेट जाना है; किसी को वृक्ष से टिकना हो, टिक जाना है; आँख बन्द रखना हो, बन्द कर लेना है; खुली रखना हो, खुली रखना है। बस, एक भी बात नहीं होगी। चुपचाप आप यहाँ बैठ जायेंगे। घंटे भर देखें। शायद चुपचाप होने से आपको कुछ सुनायी पड़े, कोई सम्बन्ध हो जाय। जीवन के सब सम्बन्ध मौन में होते हैं। शब्द तोड़ते हैं। मौन जोड़ता है। तो घंटे भर बैठेंगे मौन सम्भाषण के लिए। उसके लिए तैयारी चाहिए। तो साढ़े तीन बजे यहाँ आयेंगे, ढाई बजे से ही थोड़ी वहाँ तैयारी करना। ढाई बजे से ही थोड़ा चुपचाप हो जाना शुरू कर देना, क्योंकि विचार का मूमेंटम होता है। एक चक्के को हम चला दें, फिर छोड़ दें तो भी १५-२० मिनट तक वह चक्का चलता ही चला जायगा, चलता चला जायगा। ढाई बजे से आप शिथिल छोड़ देना बात करने को, साढ़े तीन बजे तक थोड़ी चुप्पी आ जाय। अच्छा हो कि स्नान करके आयें, ताजा वस्त्र पहनकर आयें ताकि एक बिलकुल

आचार्य रजनीशजी
अन्य रचनाएँ

साधनापथ
क्रान्तिबीज
अंतर्यात्रा
अमृत-कण
अहिंसा-दर्शन
मिट्टी के दिये
शांति की खोज
मैं कौन हूँ ?
कुछ ज्योतिर्मय क्षण
नये मनुष्य के जन्म की दिशा
सत्य की खोज
अस्वीकृति में उठा हाथ
अज्ञात की ओर
नये संकेत
संभोग से समाधि की ओर
प्रभु की पगडंडियाँ
शून्य की नाव

आचार्य रजनीश
(समन्वय, विश्लेषण और संसिद्धि)
ले० डॉ० रामचन्द्र प्रसाद

•

ज्योति शिखा (त्रैमासिक) वार्षिक शुल्क
युक्रान्द (पाक्षिक) ,, ,, १

जीवन जागृति केन्द्र
५३, एम्पायर बिल्डिंग
फोर्ट, बम्बई-१